G. K. U

VIGYN PARGATI

विज्ञान प्रगति

VIGYAN PRAGATI

DEC. 1959—JAN. 1960

इस अंक में
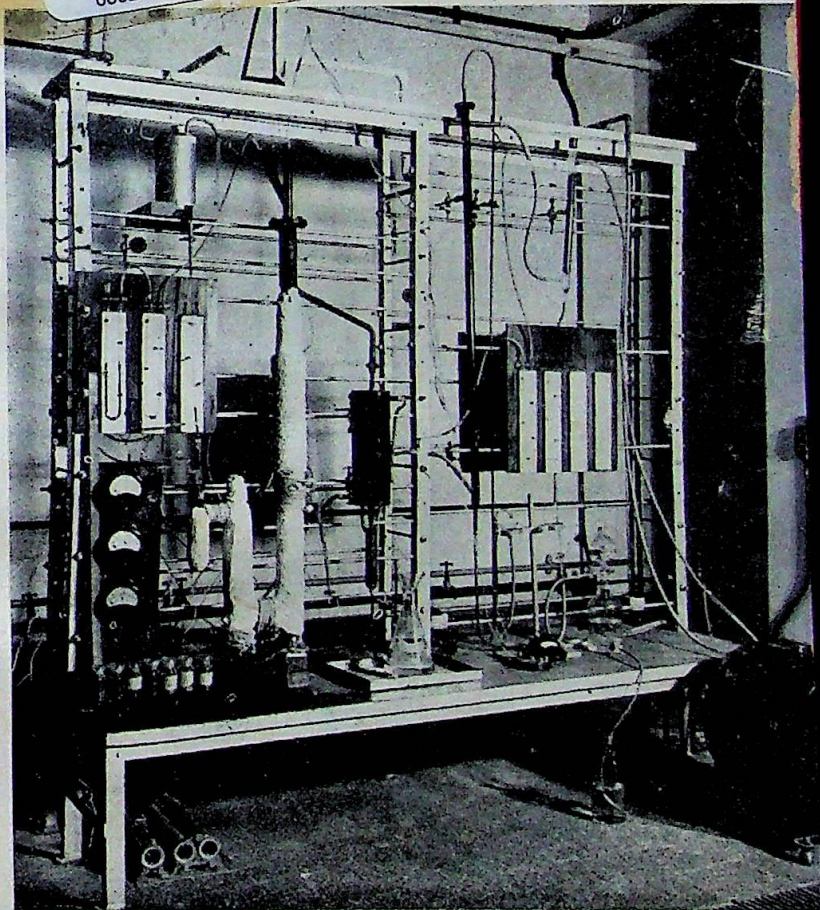
THE COUNCIL OF SCIENTIFIC & INDUTSRIAL RESEARCH, NEW DELHI

कौंसिल ग्राफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली

विज्ञान प्रगति

विज्ञान प्रगति घरेलू और छोटे उद्योगों में लगे हुए लोगों की आवश्यकताओं को अपने सामने रखता है। वह राष्ट्रभाषा के जरिये से यह बताने का प्रयत्न करता है कि देश भर में फैली कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च की प्रयोगशालाएं और दूसरी अनुसंधान संस्थाएं उनके लिए क्या काम कर रही हैं। 'विज्ञान प्रगति' में छोटे उद्योगों के सम्बन्ध में की गई खोजों के उन चुने हुए नतीजों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाएगा जो तुरन्त काम में लाये जा सकें। पेटेण्टों के साहित्य की छानबीन की जाएगी और ऐसी ईजादों और आविष्कारों की सूचना 'विज्ञान प्रगति' में दी जाएगी, जो छोटे उद्योग-धन्धों में लगे हुए लोगों के काम में आ सकती हों। विज्ञान प्रगति छोटे उद्योग-धंधों में लगे हुए लोगों की अड़चनों और कठिनाइयों को समझना चाहता है और उन्हें अपने प्रश्न भेजने का निमन्त्रण देता है। उनके प्रश्नों के उत्तर प्रश्न विशेष के बारे में खोजबीन करने वाली संस्था या खोजबीन करने वाले व्यक्ति से प्राप्त करके दिए जायेंगे। इसमें वैज्ञानिक साहित्य का विमर्श रहेगा। अनुसंधान-केन्द्रों के विषय में सूचनायें रहेंगी, और ऐसी प्रगतियों के समाचार रहेंगे जिनका सम्बन्ध छोटे उद्योग-धंधों से हो। अनुसंधान-समाचार सेवा के लिए विज्ञान प्रगति देश की अनुसंधान संस्थाओं की मदद पर निर्भर है। वह देश में फैले हुए उन संगठनों के सहयोग पर निर्भर है जो वर्षों से घरेलू और छोटे उद्योग-धन्धों की भलाई के लिए काम कर रहे हैं और जो देश के उद्योग के इस बहुत महत्वपूर्ण हिस्से की समस्याओं को बड़ी गहराई के साथ जानते और समझते हैं।

विज्ञान प्रगति

वर्ष ८ पौष, शक १८८१ अंक १२

विषय पृष्ठ

मुख चित्र परिचय

अल्कोहल से एथीलीन उत्पादन का छोटा प्रयोगी संयंत्र :
राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना

'विज्ञान प्रगति' प्रति मास प्रकाशित होता है। कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च लेखकों के कथनों और मतों के विषय में किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं लेती। 'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित होने के लिये लेख और विज्ञापन, विमर्श के लिये पुस्तकें, और चंदे आदि की रकम 'विज्ञान प्रगति' पब्लिकेशंस डायरेक्टोरेट, कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नई दिल्ली-१, के पते पर भेजी जानी चाहिये।

प्र. सम्पादक बी. एन. शास्त्री
स. सम्पादक रामचन्द्र तिवारी

वार्षिक मूल्य : ५ रुपये
प्रति अंक : पचास नये पैसे

VIGYAN PRAGATI, VOL. 8, NO. 12, DECEMBER 1959-JANUARY 1960, Pp. 407—448.

विज्ञान प्रगति

मध्य प्रदेश और मद्रास

बम्बई और पंजाब

के शिक्षा विभागों

द्वारा

उत्तर प्रदेश

के पंचायत राज विभाग द्वारा

और

सामुदायिक योजना के प्रशासक द्वारा

पुस्तकालयों तथा वाचनालयों के लिये

स्वीकृत है।

भारत में घरेलू ईंधन का उपयोग

जयकिशन*

लेखक का 'डोमेस्टिक फ्यूल कंजप्सन इन इण्डिया' शीर्षक लेख जरनल ग्राफ साईंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, १८ए (१९५९), ४५८ में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत लेख उसी का संक्षिप्त है। लेख में १९५४-५५ की जनसंख्या और प्राप्त सामग्री के आधार पर अनुमाना गया है कि भारतीय घरों में ईंधन की वार्षिक खपत ८,२२,४०,०००.टन साधारण सूखी लकड़ी के तुल्य है। इसमें से ७८ प्रति शत देहात और २२ प्रति शत शहरों में इस्तेमाल किया जाता है। कुल ईंधन का ४९.६ प्रति शत गोबर, ३८.७ प्रति शत लकड़ी और उसके कोंयले, ८.५ प्रति शत पौधाई व्यर्थ, २.७ प्रति शत सौफ्ट कोक ०.४ प्रति शत मिट्टी के तेल और ०.१ प्रति शत बिजली के रूप में होता है। लकड़ी के ऊपर लिखी कुल तुल्य मात्रा उसके वास्तविक लिखित उत्पादन से लगभग ५ गुनी है। भारत में उत्पन्न गीले गोबर की कुल मात्रा १,०३,६०,००,००० टन अनुमानी जाती है। इस्तेमाल के लिये ६९,६०,००,००० टन गोबर प्राप्य होता है जिसमें ३० करोड़ टन उपलों के रूप में जलाया जाता है।

औद्योगीकरण की किसी योजना को कार्यान्वित करने के लिये काफी शक्ति प्राप्त करने की समस्या भी कच्चे माल और दक्ष शिल्पियों की समस्या के समान ही महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार ने शक्ति के स्रोतों के विकास पर विशेष जोर दिया है। इस सिलसिले में यह आवश्यक हो जाता है कि देश के औद्योगिक, घरेलू और दूसरे क्षेत्रों में जो शक्ति इस्तेमाल की जाती है उसका यथासम्भव सही-सही अनुमान लगाया जाये।

औद्योगिक स्तर पर दूसरे अल्प विकसित देशों की भांति भारत में भी दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा घरेलू क्षेत्र में कुल शक्ति का बहुत बड़ा भाग इस्तेमाल किया जाता है और क्योंकि इस क्षेत्र की आवश्यकता सबसे पहले पूरी करना जरूरी है इसलिये शक्ति के उत्पादन और उपयोग के किसी भी सर्वेक्षण को यहीं से आरम्भ किया जाना चाहिये।

---

*भूतपूर्व टैक्निकल आफीसर (फारस्ट्री), खाद्य और कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
वर्तमान पता, जे. बी./५ राजौरी गार्डन्स, नई दिल्ली।

देश की ४/५ से अधिक जनता देहात में रहती है और गांव में रहने वाले लोग ईंधन के लिये लकड़ी, गोबर और कृषि तथा दूसरे पौधाई व्यर्थों पर निर्भर रहते हैं। ये ऐसे पदार्थ हैं जो आमतौर पर उपभोक्ता की आवश्यकताओं के अनुसार स्थानीय रूप से मुफ्त मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में किसी नियमित और व्यापक सर्वेक्षण की सहायता के बिना विभिन्न प्रकार के ईंधनों की खपत का सही-सही अनुमान लगाना लगभग असम्भव है। अब तक इस प्रकार का कोई व्यापक सर्वेक्षण नहीं किया गया है और कुछ विशेष प्रकार के ईंधनों के बारे में तो कोई भी सीधी लिखित जानकारी प्राप्त नहीं है।

वर्तमान विवेचन में घरेलू ईंधनों के सम्बन्ध में बिखरी हुई सूचना विभिन्न स्रोतों से इकट्ठी की गई है और उनकी सहायता से पूरे देश के लिये, १९५४-५५ की जनसंख्या के आधार पर, ईंधनों की खपत का अनुमान लगाया गया है। प्रकाश के लिये जो शक्ति काम में लाई गई थी, उसे इन अनुमानों में शामिल नहीं किया गया है।

पन-बिजली के अतिरिक्त अधिकतर उपयोगी शक्ति कुछ जैविक पदार्थों को जला कर प्राप्त की जाती है। इसे सुविधा के लिये प्राथमिक, द्वितीयक और पमाण्विक नामक वर्गों में बांटा गया है। पहले वर्ग में ईंधनों में खनिज तेल, पत्थर का कोयला, लिगनाइट और पन-बिजली को शामिल किया जा सकता है। लकड़ी का कोयला, वनस्पति तेल और जन्तुओं की चर्बी, गोबर, कृषि तथा दूसरे पौधाई व्यर्थ आदि दूसरे वर्ग में आते हैं। तीसरे वर्ग के ईंधनों का अभी काफी प्रचलन नहीं हुआ है।

घरेलू ईंधनों के गुण

घरेलू ईंधनों का गुण उनकी गर्मी देने की शक्ति या कलौरी मान, उसमें उपस्थित नमी तथा जलने के बाद बच रहने वाली राख से निश्चित किया जाता है। पत्तियां, झाड़ियां और खेती तथा दूसरे पौधाई व्यर्थ तेजी से जल जाते हैं और उनकी अधिकतर गर्मी व्यर्थ जाती है। जो लकड़ियां एक-सी गति से जलती हैं और राख होने से पहले कोयले में परिवर्तित हो जाती हैं उत्तम ईंधन समझी जाती हैं। धुआं रहित होना और आसानी से आग पकड़ लेना भी ईंधन के अच्छे गुण हैं।

सारणी १ में उन ईंधनों का नाम, नमी और राख की मात्रा दी गई है जो आमतौर से भारतीय घरों में इस्तेमाल किये जाते हैं[१, २]। उनसे सूखी लकड़ी की तुल्यता निकालने के मोटे गुणांक भी दिये गये हैं। इन गुणांकों का निश्चयन करते समय ईंधनों के उष्मामान और उपयोग में होने वाली गर्मी की हानि का ध्यान रखा गया है। इस हिसाब का आधार लकड़ी को इसलिये माना गया है कि आगे भविष्य में बहुत दिनों तक शायद वही भारत के घरेलू ईंधनों में सबसे महत्वपूर्ण रहेगी।

भारत के देहात और शहरी क्षेत्रों में घरेलू ईंधन का जो उपयोग किया जाता है वह गुण और परिमाण दोनों में एक दूसरे से भिन्न होता है। देहात के घरों में इस्तेमाल किये जाने वाले

सारणी १—ईंधनों और व्यर्थों के कलौरी मान, नमी और राख[1, 2]

ईंधन	नमी %	राख %	कलौरी मान ब्रि. थ. यू./पौं.	लकड़ी-तुल्यता गुणांक
लकड़ी (हवा-सूखी)	९.८	१.५	८,०००	१.००
लकड़ी का कोयला	२.०	३.०	१३,९००	२.००
आम की पत्तियां	९.८	१८.०	६,१००	०.५०
झाऊ की पत्तियां	८.४	१.३	८,०००	०,६०
ताड़ की पत्तियां	९.४	५.३	७,६००	०.६०
खजूर की पत्तियां	१०.५	४.४	७,३००	०.६०
धान का छिलका	११.६	१९.५	६,२००	०.५०
नारियल का खोल	९.३	०.२	७,७००	०.७५
उपले	९.०	१८.०	५,०००	०.६३
पत्थर कोयला	—	—	१०,७००	१.६०
सौफ्ट कोक	५.०	२५.०	१०,२००	१.६०
मिट्टी का तेल	—	—	१९,८००	३.००

ईंधन की मात्रा शहरी घरों से कम होती है। देहात में लोग न ईंधन खरीदना पसंद करते हैं; और न यह सड़कों की खराबी, ढुलाई की असुविधा और स्थानीय मांग की कमी के कारण वहां बाहर से पहुँचाया जाता है। देहात का ईंधन मुख्य रूप से स्थानीय स्रोतों से आता है और जहां लकड़ी काफी नहीं मिलती, वहां वह अधिकतर कृषि और दूसरे पौधाई व्यर्थों के रूप में होता है।

शहरी इलाकों में सभी घरेलू ईंधन बाजार से मिलते हैं और उनमें अभी लकड़ी की ही प्रधानता रहती है। देश के पूर्वी और उत्तरी भागों के अधिकतर नगरों में लकड़ी की अपेक्षा सौफ्ट कोक सस्ता होने के कारण अधिक काम में लाया जाता है। उपले बहुत कम इस्तेमाल होते हैं और पौधाई व्यर्थों का उपयोग नहीं के बराबर होता है। नगरों में मिट्टी के तेल और बिजली का उपयोग बढ़ता जा रहा है।

देहात में घरेलू ईंधन का उपयोग

देश में, विशेषतया घनी आबादी के क्षेत्रों में, लकड़ी की कमी के कारण, जलवायु और खान-पान के रीति रिवाजों के अनुसार, घरेलू ईंधन का उपयोग यथासम्भव कम से कम किया जाता है। ठण्डी जलवायु में ईंधन का उपयोग अधिक होता है; और गेहूँ खानेवाले चावल खानेवालों की अपेक्षा अधिक ईंधन काम में लाते हैं। प्रत्येक राज्य के देहात में जलाये जाने वाले ईंधन की मात्रा का अनुमान लगाते समय इन अंतरों का ध्यान रखा गया है। ये अनुमान सारणी २ में दिये गये हैं।

सारणी २—विभिन्न राज्यों के देहात में घरेलू ईंधन का उपयोग

(तुल्य-लकड़ी की शब्दावली में)

राज्य	उपयोग प्रति व्यक्ति पौंड	देहाती जन संख्या लाख	कुल उपयोग लाख टन
आन्ध्र	४२०	२६७.०	५०.१
आसाम	५५०	८९.३	२१.९
बिहार	४८०	३७४.२	८०.२
बम्बई	४५०	३५८.२	७२.०
केरल	४००	१२१.८	२१.८
मध्य प्रदेश	४८०	२३७.४	५०.९
मद्रास	४००	२३४.५	४१.९
मैसूर	४२०	१५४.७	२८.९
उड़ीसा	४२०	१४५.४	२७.३
पंजाब	५४०	१३५.२	३२.६
राजस्थान	५००	१३४.७	३०.७
उत्तर प्रदेश	५००	५६५.०	१२६.१
पश्चिमी बंगाल	४२०	२०७.२	३८.९
दिल्ली	५२०	३.०	०.७
हिमाचल प्रदेश	६००	११.०	३.०
मनीपुर	५००	५.९	१.३
त्रिपुरा	४८०	६६.३	१.४
जम्मू-काश्मीर	७००	३६.२	११.३
भारत	**४६५**	**३,०८७.०**	**६४१.०**

देहाती क्षेत्रों में लकड़ी की प्राप्ति

देहाती क्षेत्रों में यदि ईंधन की लकड़ी के पेड़ आस-पास की निजी धरती, ग्राम पंचायत की धरती, बंजर, खेतों की मेड़ों, बगीचों, आदि में होते हैं तो वह वहां से प्राप्त की जाती है। जो गांव वनों के निकट होते हैं वे अपनी जलाने की लकड़ी उनमें से लेते हैं।

पिछले ५० वर्षों में देहाती क्षेत्रों में जलाने की लकड़ी की बहुत कमी हो गई है। प्रथम विश्व युद्ध से पहले घरों में अधिकांश लकड़ी जलाई जाती थी और अच्छी किस्म की लकड़ियां बहुतायत से मिल जाती थीं। आजकल बढ़िया लकड़ियां प्रायः देखने को भी नहीं मिलतीं, और

दूसरी लकड़ियां भी दुर्लभ होती जा रही हैं। ढुलाई का खर्च बढ़ जाने के कारण भी देहात में लकड़ी की कमी पड़ गई है। जो लकड़ी मिलती है वह मुख्य रूप से उन स्थानीय किस्मों के वृक्षां से प्राप्त होती है जो किसी दूसरी जरूरी आवश्यकता को पूरा करने के लिये काटे जाते हैं। दक्षिण भारत में ताड़ों की लकड़ी भी जलाई जाती है।

जिन राज्यों में कुल मिलाकर जलाने की लकड़ी उनकी आवश्यकता से अधिक होती है उनमें भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां, वितरण की सुविधा न होने के कारण, लकड़ी की कमी रहती है। उदाहरण के लिये उड़ीसा में उस राज्य की आवश्यकता से अधिक लकड़ी पैदा होती है, पर उसी राज्य के सागर तटीय देहाती क्षेत्रों में ईंधन की बहुत कमी रहती है। आसाम राज्य में सबसे अधिक वन हैं पर उसके मैदानों में भी ईंधन काफी मात्रा में प्राप्त नहीं होता।

भारत के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, नई दिल्ली, ने १९५४ में देहाती और शहरी दोनों प्रकार के परिवारों[3] में लकड़ी और लकड़ी के कोयले की खपत का अनुमान लगाया था। उनका अनुमान[4] देहाती क्षेत्रों के लिये ९,३०,००,००० टन लकड़ी वार्षिक था। यह अनुमान बहुत अधिक और देश की उत्पादन क्षमता के बहुत बाहर है। बहुत सम्भवतया इस अनुमान में कृषि और दूसरे पौधाई व्यर्थों के साथ-साथ गोबर भी शामिल कर लिया गया है।

किसी निश्चित जानकारी के अभाव में यही चारा रह जाता है कि विभिन्न स्रोतों से अलग-अलग जो सूचनायें प्राप्त हो सकती हैं, उनका अधिकतम् उपयोग किया जाये। यह कहा गया है कि लकड़ी की प्राप्ति उसके बागानों के क्षेत्र के सीधे अनुपात में होती हैं। एक सीमा तक ढुलाई के साधनों की कमी और लकड़ी के स्रोतों का असमान वितरण भी ऐसे तत्व हैं जो उसकी प्राप्ति को प्रभावित करते हैं। इसलिये विभिन्न क्षेत्रों में लकड़ी का घरेलू उपयोग प्रत्येक राज्य में काफी अलग-अलग मात्रा में होता है। विभिन्न राज्यों के लिये लेखक ने ईंधन की खपत के जो अनुमान लगाये हैं वे सारणी ३ में दिये जा रहे हैं।

इससे पता चलता है कि भारतीय देहात के घरों में १,७७,२०,००० टन लकड़ी खर्च होती है और इसका औसत १२९ पौंड प्रति व्यक्ति आता है। देश में लिखित सूचना के अनुसार १९५२–५५ की अवधि में ६३,७०,००० टन लकड़ी वार्षिक प्राप्त हुई थी[5]। इससे स्पष्ट है कि केवल देहाती क्षेत्रों में ही लकड़ी का खर्च समस्त देश में लकड़ी के लिखित उत्पादन से ३ गुना है।

लकड़ी के कोयले का घरेलू उपयोग

देहाती क्षेत्रों में लकड़ी के कोयले का उपयोग केवल उत्पादन क्षेत्रों के निकट ही होता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण[4] के अनुसार १९५४ में, जम्मू-काश्मीर को छोड़ कर, देश के देहात में २,३४,००० टन लकड़ी का कोयला जलाया गया था। इस प्रकार देहाती जनता के लिये प्रति व्यक्ति इसका औसत १.७ पौंड या ३.४ पौंड तुल्य-लकड़ी रखा जा सकता है।

कृषि और दूसरे पौधाई व्यर्थ

धान के छिलके, फसलों की जड़ें और डण्ठल, गन्ने की खोई, नारियल का खोल, झाड़ियां, पत्तियां और घासें गांव में मुख्य रूप से लकड़ी और उपले की कमी को पूरा करने के लिये व्यापक रूप से जलाई जाती हैं। विभिन्न राज्यों में ईंधन के रूप में उनकी खपत का अनुमान लगाना बहुत कठिन है। पंजाब में उसकी मात्रा जलाई जाने वाली लकड़ी की मात्रा की $\frac{1}{3}$ हो सकती है। राजस्थान के लिये यह मात्रा इतनी ही और उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी बिहार के लिये कुछ अधिक मानी जा सकती है। आसाम, उड़ीसा और केरल में नमी की अधिकता के कारण उपलों के अभाव में ये व्यर्थ अधिक मात्रा में इस्तेमाल किये जाते हैं। सारे देश के लिये देहाती क्षेत्रों में पौधाई व्यर्थ

सारणी ३—देहात के घरों में लकड़ी की वार्षिक खपत

राज्य	लकड़ी की खपत प्रति व्यक्ति पौंड	लकड़ी की कुल खपत लाख टन
आन्ध्र प्रदेश	१२०	१४.३
आसाम	३००	१२.०
बिहार	११०	१८.४
बम्बई	१२०	१९.२
केरल	१८०	९.८
मध्य प्रदेश	१६०	१७.०
मद्रास	९०	९.४
मैसूर	१३०	९.०
उड़ीसा	२००	१३.०
पंजाब	१२०	७.२
राजस्थान	६०	३.६
उत्तर प्रदेश	१००	२५.२
पश्चिमी बंगाल	९०	८.३
अण्डेमान	—	कम
दिल्ली	८०	०.१
हिमाचल प्रदेश	४५०	२.२
मनीपुर	३८०	१.८
त्रिपुरा	३५०	१.०
जम्मू-काश्मीर	४००	६.५
भारत	**१२९**	**१७७.२**

का यह उपयोग लकड़ी के बोझ का लगभग ३/४ होता है और इसकी लकड़ी तुल्यता मोटे तौर से ७० लाख टन अथवा प्रति व्यक्ति लगभग ५१ पौंड वार्षिक कही जा सकती है ।

देहात में उपलों का उपयोग

भारत में उत्पन्न होने वाले गोबर की मात्रा का अनुमान विभिन्न लोगों द्वारा अलग-अलग लगाया गया है [२,५,७]। भारत सरकार के कम्पोस्ट डिवलपमेंट अफसर के अनुसार देश में १२० करोड़ टन गीला गोबर प्रति वर्ष उत्पन्न होता है । यह अनुमान लगाते समय देश को २ भागों में बांटा गया है । पहले भाग में आसाम, केरल, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, जम्मू-काश्मीर हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा और मनीपुर हैं, जहां पशुओं का आकार छोटा होता है । दूसरे भाग में देश के शेष राज्य आते हैं जहां पशुओं का आकार बड़ा होता है । दोनों भागों के लिये गोबर के अनुमान निम्नलिखित हैं :

	भाग १	*भाग २*
वयस्क भैंस	२५ पौंड	८० पौंड
वयस्क गाय-बैल	२० पौंड	४० पौंड
बच्चे	१० पौंड	२० पौंड

इस अनुमान में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है । दूसरे भाग में वयस्क भैंस के लिये औसत गोबर की मात्रा ५५ पौंड और वयस्क गाय-बैल के लिये ३५ पौंड अधिक सही होगा । इन परिवर्तित अंकों के आधार पर गीले गोबर की उत्पत्ति का जो गणित किया गया है उसके फल सारणी ४ में दिये जा रहे हैं। पशुओं की संख्या १९५६ की पशु गणना से ली गई है। भारत के देहाती क्षेत्र में इस प्रकार गीले गोबर की मात्रा ९९,५१,४०,००० टन अनुमानी जाती है ।

देश में ईंधन के रूप में उपलों की मात्रा के विविध अनुमान लगाये गये हैं [४,७,८,९,१०,१२]। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के **मेमोरण्डम आन दि डिवलपमेंट आफ एग्रीकल्चर एंड एनीमल हस्बैंडरी इन इन्डिया** के अनुसार कुल गोबर का लगभग ४० प्रति शत और **खादों तथा उर्वरकों की विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट** के अनुसार ५० प्रति शत गोबर जलाने के लिये काम में लाया जाता है । इस अनुमान में देहाती और नागरिक दोनों क्षेत्र शामिल हैं। इससे लकड़ी, लकड़ी के कोयले और पौधाई व्यर्थ की मात्रा मालूम होने के कारण देहाती क्षेत्र में उपलों की खपत का अनुमान लगाया जा सकता है । लकड़ी की शब्दावली में कुल गर्मी ६४१ लाख टन के बराबर आती है जिसमें लकड़ी से १७७.२, लकड़ी के कोयले से ४.७ और पौधाई व्यर्थ से ७० लाख टन मिलती है । शेष ३८९.१ लाख टन लकड़ी के तुल्य गर्मी ६२२.६ लाख टन उपलों अथवा २,८९० लाख टन गीले गोबर से आती है जो ६,६३० लाख टन प्राप्य गीले गोबर का ४३ प्रति शत है । इस प्रकार प्रति व्यक्ति ईंधन के रूप में उपलों का उपयोग ४५२ पौंड अथवा २८२ पौंड तुल्य लकड़ी के बराबर माना जा सकता है ।

सारणी ४—देहाती क्षेत्रों में गोबर का वार्षिक उत्पादन और खपत

राज्य	कुल ताजा गोबर	प्राप्य गोबर	ईंधन गोबर	खपत
	लाख टन	लाख टन	लाख टन	%
वर्ग एक				
आसाम	१६१.२	१०७	१८.३	१७
केरल	७७.६	५२	६.३	१८
उड़ीसा	२५२.०	१७०	४१.१	२४
पश्चिमी बंगाल	३३१.७	२२०	६६.८	४५
जम्मू-काश्मीर	५७.६	३८		
हिमाचल प्रदेश	९२.६	६०	३७.५	३०
मनीपुर	२३.०	१५		
त्रिपुरा	९.६	६		
वर्ग दो				
आन्ध्र प्रदेश	९४४.४	६३०	२४६.४	३९
बिहार	९५८.६	६४०	३७६.०	५९
बम्बई	१,२८६.८	८६०	३७०.२	४३
मध्य प्रदेश	१,४२७.४	९५०	२३७.३	२५
मद्रास	५८०.९	३९०	२०६.७	५३
मैसूर	५९७.८	४००	१३०.०	३२
पंजाब	५१९.६	३५०	१७७.६	५१
राजस्थान	७८०.९	५२०	१८८.१	३६
उत्तर प्रदेश	१,८१४.५	१,२००	७१३.०	५९
दिल्ली	३४.५	२३	३.७	१६
अण्डेमान	—	—	—	—
योग	९९५१.४	६,६३१	२८५५.०	४३

उपलों के इतने अधिक उपयोग का कारण यह है कि बहुत से राज्यों में लकड़ी कम मिलती है और जनसंख्या अधिक है। अधिक नमी वाले राज्यों में अधिक धूप वाले राज्यों की अपेक्षा उपला कम इस्तेमाल किया जाता है। विभिन्न राज्यों की घरेलू ईंधन की आवश्यकता और उनमें लकड़ी के कोयले तथा पौधाई व्यर्थों की प्राप्ति के आधार पर लगाये हुये उपलों की खपत का अनुमान सारणी ४ में दिया गया है। देहाती क्षेत्रों में विभिन्न ईंधनों की कुल खपत सारणी ५ दी गई है।

शहरी क्षेत्रों के घरों में ईंधन की खपत

पिछले पचास वर्षों में नगरों के घरों के ईंधनों की खपत के नक्शे में काफी परिवर्तन हुआ है। इससे पहले कुछ उपलों के साथ वहां जलाने के लिये केवल लकड़ी इस्तेमाल की जाती थी। यह लकड़ी निकट के देहात और जंगलों से आती थी। पहले विश्व युद्ध में इन वन-बागानों का बहुत-सा भाग समाप्त हो गया और नगरों में ईंधन की लकड़ी सब दूर के वनों से आने लगी, पर वह अब भी मुख्य ईंधन बनी रही। दूसरे विश्व युद्ध में जलाने की लकड़ी की प्राप्ति और भी कम हो गई और तब से नगर निवासियों ने एक सीमा तक सौफ्ट कोक, बिजली और मिट्टी के तेल का उपयोग आरम्भ कर दिया है। कहीं-कहीं लकड़ी का बुरादा और छीलन आदि भी काम में लाई जाती हैं पर इनकी मात्रा लगभग नगण्य समझी जा सकती है।

ईंधन लकड़ी—भारत के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण[४] और अभी हाल में व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद, नई दिल्ली[१३], ने नागरिक क्षेत्रों में ईंधन की खपत के बारे में अध्ययन किये हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार लकड़ी की प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष सबसे कम खपत, १९८ पौंड, पूर्वी भारत के नगरों में है। इसका कारण यह है कि यह क्षेत्र मुख्य रूप से पश्चिमी बंगाल में पड़ता है जो पत्थर-कोयले की खानों के निकट है। यहां सौफ्ट कोक काफी और सस्ता मिल जाता है और इसलिये मुख्य ईंधन बन गया है।

देश के मध्य भाग में लकड़ी की खपत सब से अधिक, ६१८ पौंड, प्रति व्यक्ति वार्षिक है और इस क्षेत्र में पहले की हैदराबाद रियासत को छोड़कर काफी ईंधनी लकड़ी पैदा होती है। मध्य प्रदेश की सरकार इस क्षेत्र में ईंधन के समुचित वितरण की ओर विशेष ध्यान देती है। इस भाग में शहरी क्षेत्र अधिक नहीं है इसलिये सौफ्ट कोक और दूसरे प्राथमिक ईंधनों का उपयोग नहीं किया जाता।

पूरे देश के लिये नगरवासी जनता में घरेलू ईंधन लकड़ी की खपत ३७२ पौंड प्रति व्यक्ति मानी जा सकती है। इस हिसाब से देश में प्रति वर्ष ११४.५ लाख टन लकड़ी जलाई जाती है। यह मात्रा लकड़ी के लिखित उत्पादन के दुगने से कुछ ही कम है। यह बात इस तथ्य से आसानी से समझ में आ जाती है कि देश में लकड़ी का जो लिखित उत्पादन होता है वह सभी नगरों में चला जाता है और इसके अतिरिक्त आस-पास के देहात, आरा मशीनों और लकड़ी के दूसरे उद्योगों से जो ईंधन मिलता है वह भी नगरों में खप जाता है।

लकड़ी का कोयला—देश के केवल दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी भाग में ही लकड़ी का कोयला महत्वपूर्ण मात्रा में जलाया जाता है और इसकी खपत २७ पौंड प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष मानी जा सकती है। सौफ्ट कोक उत्पादक क्षेत्र से दूर होने के कारण यहां उसका विशेष उपयोग नहीं किया जाता।

भारत के नागरिक क्षेत्रों के घरों में जलाये जाने वाले लकड़ी के कोयले की कुल मात्रा ४,३५,००० टन अथवा १४.७ पौंड प्रति व्यक्ति है जो देहाती क्षेत्रों में उपयुक्त मात्रा से नौ गुनी है।

उपले—नगरों में उपले देहात की अपेक्षा बहुत कम जलाये जाते हैं और ये उपले अधिकतर वहीं तैयार किये जाते हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार लगभग तीस लाख टन उपले प्रति वर्ष नागरिक क्षेत्र में जलाये जाते हैं जो प्रति व्यक्ति ९७ पौंड वार्षिक पड़ते हैं। तुल्य लकड़ी की शब्दावली में ये मात्रायें क्रमशः १८.९ लाख टन और ६१ पौंड हैं। इस प्रकार नगरों के घरों में उपलों का उपयोग देहात की अपेक्षा लगभग १/५ है।

सौफ्ट कोक—सौफ्ट कोक का उपयोग शहरी क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है। देश के पूर्वी भाग में इसका उपयोग सबसे अधिक होता है। दिल्ली में इसका उपयोग कुल ईंधन का लगभग ५० प्रतिशत है[१३]। १९५४ में घरों में १४ लाख टन सौफ्ट कोक अथवा १७.५ लाख टन तुल्य पत्थर कोयला इस्तेमाल किया गया था। इसकी लकड़ी तुल्यता २२.४ लाख टन होती है। यह मान कर कि यह सब शहरी क्षेत्र में ही जलाया गया था, पत्थर कोयले की प्रति व्यक्ति खपत ४५.५ पौंड और इसकी लकड़ी तुल्यता ७३ पौंड आती है।

बिजली—भारत में १९५४ में जो बिजली घरों में गर्मी प्राप्त करने तथा दूसरे कामों के लिये उपयोग की गई थी उसकी मात्रा १,३५४ लाख किलोवाट घन्टे अनुमानी गई है[१४]। क्योंकि यह सब मात्रा शहरी क्षेत्रों में इस्तेमाल हुई है इसलिये इसकी प्रति व्यक्ति खपत १.९६ किलोवाट घन्टे आती है। यदि हम यह मान लें कि बिजली की गर्मी देने की क्षमता लकड़ी की अपेक्षा लगभग चार गुनी है, तो इस मात्रा की लकड़ी तुल्यता १ लाख टन अथवा शहरी जनसंख्या के प्रति व्यक्ति के पीछे ३.३ पौंड आती हैं।

मिट्टी का तेल—मिट्टी का तेल यद्यपि मुख्य रूप से प्रकाश के लिये काम में लाया जाता है, पर घरों में जलाने के लिये भी उसका उपयोग दिनों दिन तेजी से बढ़ता जा रहा है। इसकी खपत १ लाख टन अथवा ३ लाख टन तुल्य लकड़ी अथवा ९.७ पौंड प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष मानी जा सकती है।

होस्टलों, बोर्डिंग हाउसों, मेसों, होटलों, आदि में ईंधन की खपत भी घरेलू खपत मानी जा सकती है। अधिक सही अनुमान के अभाव में इस खपत को शहरी घरों की खपत का १० प्रति शत माना जा सकता है। इसके आधार पर शहरी इलाकों के लकड़ी, लकड़ी के कोयले और बिजली की खपत के अनुमान में परिवर्तन करके, इस क्षेत्र में उपयोग किये जाने वाले ईंधनों की मात्रा सारणी ६ में दी जा रही है।

तुल्य लकड़ी की शब्दावली में शहरी क्षेत्र में जलाये जाने वाले कुल ईंधन की मात्रा १८१.४ लाख टन और प्रति व्यक्ति ५८८.३ पौंड है। इसमें प्रकाश के काम में लाई जाने वाली

सारणी ५–देहाती क्षेत्र में विभिन्न ईंधनों की वार्षिक घरेलू खपत

ईंधन	कुल खपत		प्रति व्यक्ति खपत		कुल का
	ईंधन लाख टन	तुल्य लकड़ी लाख टन	ईंधन पौंड	तुल्य लकड़ी पौंड	%
लकड़ी	१७७.२०	१७७.२	१.२६	१२६.०	२७.७
लकड़ी का कोयला	२.३४	४.७	१.७०	३.४	०.७
कृषि और पौधाई व्यर्थ (लकड़ी-तुल्यता)	७०.००	७०.०	५०.६०	५०.६	१०.६
उपले	६२२.६०	३८६.१	४५२.००	२८२.०	६०.७
योग	—	६४१.०	—	४६५.०	१००.०

सारणी ६–नागरिक क्षेत्रों के घरों में ईंधन और बिजली की वार्षिक खपत

ईंधन	खपत		तुल्य लकड़ी		
	कुल लाख टन	प्रति व्यक्ति पौंड	कुल लाख टन	प्रति व्यक्ति पौंड	कुल का %
लकड़ी (हवा-सूखी)	१२६.०	४०६.००	१२६.०	४०६.०	६६.५
लकड़ी का कोयला	५.०	१६.००	१०.०	३२.०	५.४
उपले	३०.०	६७.००	१८.६	६१.०	१०.४
सौफ्ट कोक	१४.०	४५.४०	२२.४	७३.०	१२.४
बिजली*	४८६.४	२.१६	१.१	३.६	०.६
मिट्टी का तेल	१.०	३.२०	३.०	६.७	१.७
सब ईंधन	—	—	१८१.४	५८८.३	१००.०

*बिजली की कुल मात्रा लाख किलोवाट घंटों में और प्रति व्यक्ति खपत किलोवाट घंटों में दी गई है।

ऊर्जा शामिल नहीं है। यदि एक औसत परिवार में ५.३ व्यक्ति मान लिये जायें तो प्रति परिवार खपत ३,११८ पौंड लकड़ी अर्थात् २५×१०^{६} ब्रिटिश थर्मल यूनिट होगी। केन्द्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान के अनुमान के अनुसार यह मात्रा ३०×१०^{६} ब्रिटिश थर्मल यूनिट है।

सारणी ६ से ज्ञात होता है कि शहरी क्षेत्रों में लकड़ी अब भी मुख्य ईंधन है और इसकी मात्रा कुल ईंधन की ६६ प्रति शत है। उपलों और सौफ्ट कोक का उपयोग क्रमशः लगभग १० और १५ प्रति शत है। लकड़ी का कोयला जो दूसरे दर्जे पर आता है, ५ प्रति शत है। इस

प्रकार शहरी क्षेत्रों में जो ईंधन इस्तेमाल होता है उसकी प्रति व्यक्ति मात्रा देहाती क्षेत्र से २७ प्रति.शत अधिक है।

कुल घरेलू ईंधन

सारणी ७ में शहरी और देहाती क्षेत्रों के कुल घरेलू ईंधन की खपत दी जा रही है। प्रति वर्ष घरेलू क्षेत्र में ३०३.२ लाख टन लकड़ी जलाई जाती है जो दूसरे स्थानों पर जलाई जाने वाली १२ लाख टन लकड़ी के साथ मिलकर ३१५.२ लाख टन हो जाती है। इस मात्रा में लगभग ७ लाख टन वह लकड़ी व्यर्थ है जो लकड़ी आधारित विभिन्न उद्योगों से प्राप्त होता है। शेष ३०८.२ लाख टन ईंधन लकड़ी है। इस प्रकार देश में खपने वाली ईंधन लकड़ी की मात्रा लिखित उत्पादन की मात्रा से लगभग ५ गुनी है।

देश में उद्योगों के काम में आने वाली लकड़ी का उत्पादन १९५३-५५ के लिये २,२५० लाख घन फुट अथवा ४५ लाख टन लगाया गया है[१५]। भारत में ईंधन लकड़ी का उत्पादन औद्योगिक लकड़ी के उत्पादन से ७ गुना है। दक्षिण पूर्वी एशिया के अधिकांश देशों में यह अनुपात ८ से १० तक पाया जाता है। भारत में प्रति व्यक्ति ईंधन लकड़ी का वार्षिक उपयोग १८० पौंड अथवा ४.४ घन फुट ठहरता है। यदि कोयला बनाने के लिये इस्तेमाल की जाने वाली लकड़ी भी शामिल करली जाती है तो यह अंक ४.९ घन फुट हो जाता है।

घरेलू क्षेत्रों में जो ७,३४,००० टन लकड़ी का कोयला इस्तेमाल होता है उसमें उद्योग में इस्तेमाल किये जाने वाले १,५०,००० टन जोड़ देने से कुल मात्रा ८,८४,००० टन हो जाती है। इसमें से ३,३५,००० टन लिखित उत्पादन है और शेष अलिखित स्रोतों से आता है।

सारणी ७—भारत में घरेलू ईंधन की कुल वार्षिक खपत

ईंधन	परिमाण लाख टन	लकड़ी-तुल्यता लाख टन	कुल ईंधन का %
लकड़ी (हवा-सूखी)	३०३.२०	३०३.२	३६.९
लकड़ी का कोयला	०७.३४	१४.७	१.८
कृषि और पौधाई व्यर्थ (लकड़ी-तुल्यता में)	७०.००	७०.०	८.४
उपले	६५२.६	४०८.०	४९.६
सौफ्ट कोक	१४.००	२२.४	२.७
मिट्टी का तेल	१.००	३.०	०.४
बिजली*	१४८९.४०	१.१	०.१

*बिजली की मात्रा लाख किलोवाट-घंटों में दी गई है।

देश में उत्पन्न होने वाला कुल गीला गोबर १०,३६० लाख टन है, जिसमें से ६,६६० लाख टन उपयोग के लिये प्राप्य है। ईंधन की भांति इस्तेमाल किये जाने वाले गीले गोबर की मात्रा ३ हजार लाख टन है जो ६५२.६ लाख टन उपलों के बराबर होती है। यह मात्रा कुल प्राप्य परिमाण का ४३ प्रति शत है।

पूरे देश के घरों में इस्तेमाल किये जाने वाले ईंधन की मात्रा ८२२,४ लाख टन तुल्य लकड़ी के बराबर है। लकड़ी, लकड़ी का कोयला, कृषि और पौधाई व्यर्थ तथा उपले कुल मात्रा का ९७ प्रति शत बनाते हैं। द्वितीयक ईंधनों से केवल ३ प्रति शत गर्मी प्राप्त की जाती है। उपलों से कुल ईंधन की ५० प्रति शत मात्रा आती है

सदर्भ

१. डोमेस्टिक फ्यूअल, **एफ. आर. आई. न्यूज, ३** (१९५३), १-६.

२. शाह, एम. एन., **नेचर, लंदन, १७७** (१९५६), ९२३-४.

३. **सेन्सज आफ इंडिया १९५१** (मैनेजर आफ पब्लिकेशंस, भारत सरकार, दिल्ली), १९५७.

४. एफ ए. ओ./ई. सी. ए. एफ. ई., **टिम्बर ट्रेंड स्टडी फार दि फार ईस्ट : कंट्री रिपोर्ट फार इंडिया** (खाद्य और कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली), १९५८, स्टेटमैन्ट नं. १६ और सारणी ११.

५. आचार्य, सी. एन., **इंडियन फार्मिंग, ५** (१९४४), ४७०.

६. **इंडियन फारेस्ट स्टैटिसटिक्स, १९५४-५५,** जिल्द **१** (सारणियों का सारांश) (मैनेजर आफ पब्लिकेशंस, भारत सरकार, दिल्ली), १९५७, २-६.

७. बर्न्स, डब्ल्यू., **टेक्निकल पौसिबिलिटीज आफ एग्रीकल्चरल डिवलपमेंट इन इंडिया** (मैनेजर आफ पब्लिकेशंस, भारत सरकार, दिल्ली), १९४४, ११६.

८. नटराजन, बी., **रिपोर्ट आन पाइलट सर्वे इन मैन्योर प्रोडक्शन इन चिंगलपट डिस्ट्रिक्ट, मद्रास,** (गवर्नमैन्ट प्रिंटिंग प्रैस, मद्रास), १९५४.

९. पुतनम, पी. सी., **इनर्जी इन दि फ्यूचर** (वान नौस्ट्रेंड एन्ड कम्पनी, न्यूयार्क), १९५३, ३४७—५५.

१०. भाभा, एच. जे. **प्रोसीडिंग्ज आफ दि इंटरनैशनल कान्फ्रेंस आन दि पीसफुल यूसेज आफ एटोमिक इनर्जी,** जिल्द **१** (यूनाइटेड नेशंस, न्यूयार्क), १९५६.

११. इम्पीरियल कौंसिल ग्राफ एग्रीक्लचरल रिसर्च, नई दिल्ली, का सलाहकारी बार्ड: **मैमोरेन्डम ग्रान दि डिवलपमेंट ग्राफ एग्रीक्लचर एंड एनीमल हस्बैन्ड्री इन इंडिया** नं. २७, १९४४.

१२. **रिपोर्ट ग्राफ दि एक्सपर्ट्स कमेटी ग्रान मैन्योर्स एंड फर्टिलाइजर्स**, नं. ३४ (खाद्य ग्रौर कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली), १९५३.

१३. **यूटिलाइजेशन ग्राफ प्राइमरी इनर्जी इन इंडिया** (नेशनल कौंसिल ग्राफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च, नई दिल्ली), १९५८.

१४. **पब्लिक इलेक्ट्रिसिटी सप्लाई–ग्राल इंडिया स्टैटिसटिक्स, १९५४** (केन्द्रीय जल ग्रौर शक्ति ग्रायोग, नई दिल्ली), १९५५.

१५. एफ. ए. ग्रो./ई. सी. ए. एफ. ई., **टिम्बर ट्रेंड स्टैंडो फार दि फार ईस्ट: कन्ट्री रिपोर्ट फार इंडिया** (खाद्य ग्रौर कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली), १९५८, सारणी २.

धातुकर्मी विकास में संयंत्र—एक गोष्ठी

राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला, जमशेदपुर में, फरवरी, १९६०, में पायलट प्लांटों के सम्बन्ध में एक गोष्ठी का ग्रायोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में जिन विषयों पर विचार किया जायेगा, वे हैं: प्रयोगशाला के ग्रनुसंधान ग्रौर उनके ग्रौद्योगिक उपयोग के सम्बन्ध में प्रयोगी संयत्र योजनायें; शिल्पिक विधियों को उत्पादन पैमाने पर उपयोग करने के सम्बन्ध में ग्रार्थिक ग्रौर प्रक्रम पहलुग्रों की जांच में उनका महत्व; भारत में धातुकर्म ग्रनुसंधान के लिये प्रयोगी संयत्र; संसार के विभिन्न भागों में काम करने वाले इस प्रकार के संयत्र; धातुकर्म की विभिन्न क्रियाग्रों से सम्बन्ध रखने वाले संयत्र; धातुकर्मी प्रयोगी संयत्रों के लिये निर्माण सामग्री; तथा पूंजी ग्रौर चलाने के खर्च की शब्दावली में व्यवहृत विधियों की उत्पादन लागत ग्रौर सम्पूर्ण ग्रार्थिक पहलुग्रों की जानकारी, सांख्यिक विश्लेषण ग्रौर प्रयोगी संयत्र से प्राप्त जानकारी का मूल्यांकन।

दोहरी मुड़ी इमारती सिल्लियों का पूर्व निर्माण

देश में बहुत बड़ी संख्या में मकान बनाने के कार्यक्रम को कार्यान्वित करते समय काफी मात्रा में सीमेंट और लोहा प्राप्त करने की कठिनाई सामने आती है। इसे हल करने के लिये छत की ऐसी बनावट का विकास करना जरूरी था जिसमें इन वस्तुओं की यथासम्भव अधिक से अधिक बचत की जा सके। केन्द्रीय वास्तु अनुसंधान संस्थान, रुड़की, ने इस समस्या का अध्ययन किया और इस सम्बन्ध में एक दोहरी मुड़ी सिल्ली या चौके का आविष्कार किया। यह सिल्ली एक इंच मोटी होती है और इसके चारों किनारे समर्थित या रीन्फोर्स्ड कंकरीट के बने होते हैं। सिल्ली के बीच के भाग में लोहे की पतली जाली हो सकती है। इसकी आकृति ऐसी होती है कि उसके ऊपर पड़ने वाला जोर उसे केवल दबाता मात्र है। यह जोर इतना कम होता है कि इन सिल्लियों को सीमेंट-कंकरीट के स्थान पर चूना-सुर्खी-कंकरीट से तैयार किया जा सकता है। ऐसा करने से सीमेंट की बचत होती है।

सिल्ली का आकार

इन सिल्लियों के आकार को आमतौर से ४ फुट लम्बा और ४ फुट चौड़ा रखा जाता है। इतनी बड़ी सिल्लियां बिना किसी मशीन की सहायता से बनाई जा सकती हैं। ऐसी एक सिल्ली का बोझ लगभग २७५ पौंड होता है। इसे चार आदमी आसानी से उठा सकते हैं। पर जहां पर उठाने-धरने के लिये क्रेन की सहायता ली जा सकती हो, वहाँ बड़ी सिल्लियां बनाने में बचत रहती है। ऐसी दशाओं में १० फुट लम्बाई और १० फुट चौड़ाई तक की सिल्लियां पहले से बनाकर यथास्थान जमाई जा सकती हैं।

बनाने की विधि

दोहरी मुड़ी आकृतियों के नाम और उनकी मजबूती काफी सुविदित हैं, पर उनका उपयोग व्यापक रीति से नहीं हुआ है। इस बारे में दो मुख्य कठिनाइयां सामने आती हैं। एक यह है कि उनकी डिज़ाइन तैयार करने में काफी जटिल गणित का उपयोग करना आवश्यक होता है और दूसरी यह है कि जिस स्थान पर उन्हें उपयोग किया जाना है उसी स्थान पर उन्हें ढालने के लिये बनाये जाने वाले सांचे भारी और भद्दे होते हैं और उन पर लागत अधिक आती है। रुड़की में जो काम हुआ है उसमें इन कठिनाइयों को दूर किया गया है।

चित्र १—चौखटे पर टाट को फैलाना
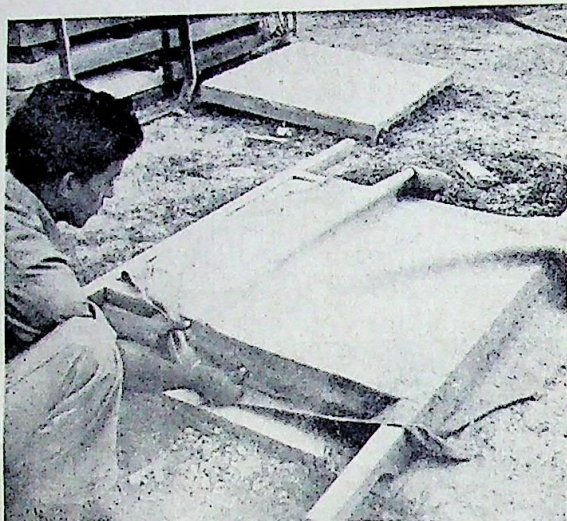
डिज़ाइन की कठिनाई यह कल्पना करके दूर की गई है कि सिल्ली पर जो जोर पड़ेगा वह केवल दवाब के रूप में होगा, वह एंठन या निरूपणकारी नहीं होगा; और इसके बाद सिल्ली के धरातल की समुचित आकृति का निश्चयन कर लिया गया। इस प्रकार, पड़ने वाले जोर के विश्लेषण की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। ढालने की कठिनाई को दूर करने के लिये सिल्लियां तैयार करने की एक ऐसी तरकीब निकाली गई जिसमें सिल्लियां स्वयं इच्छित आकृति प्राप्त कर लेती हैं। और इस प्रकार, लकड़ी, के तख्तों की सहायता से बार-बार सांचे तैयार करना जरूरी नहीं रहा। यह विधि भारतीय पेटेण्ट नं. ६१,६४५ में दी गई है।

सिल्ली ढालने के लिये लकड़ी का एक चौखटा बनाया जाता है। इस चौखटे को एक ईंट के चबूतरे के चारों ओर रखा जाता है। और चौखटे पर टाट या किसी दूसरी मुड़ने वाली बुनावट को फैलाया जाता है।

चित्र २—खोल की ढलाई

टाट के इस फैलाव की कसावट को एक गहराई द्योतक चौखटे से नियंत्रित किया जाता है। इस चौखटे के केन्द्र में एक चिन्हित घुण्डी एक ज्ञात बोझ के लोहे के गोले को छूने के लिये लटकाई जाती है। यह गोल टाट के टुकड़े को एक निश्चित सीमा तक नीचे झुकाता है। इस क्रिया की सहायता से एक से झुकाव की सिल्लियां तैयार की जा सकती हैं।

चित्र ३—चौखटे को उठाना

इस सांचे के ऊपर अब कंकरीट इसके भीतर भरी जाती हैं। इससे सिल्ली की मोटाई भी नियंत्रित हो जाती है।

अब सांचे पर एक पतली जाली रखी जाती है।

सीमेंट-कंकरीट को चौखटे के भीतर जाली और टाट के ऊपर डाला जाता है और अच्छी तरह जमा दिया जाता है।

इसके बाद बड़े चौखटे को ऊपर उठा दिया जाता है। उसके हत्थों के नीचे गिट्टे लगा दिये जाते हैं। इससे टाट नीचे झुक जाता है और सिल्ली को इच्छित आकृति मिल जाती है।

अब किनारे बनाने के लिये नया सांचा लगाया जाता है और चारों ओर मृदु इस्पात की दो-दो छड़ें सांचे के चौखटे में होकर डाल दी जाती हैं। छड़ों की मोटाई इस बात पर निर्भर करती है कि इन सिल्लियों पर कितना बोझ पड़ेगा। विभिन्न बोझों के लिये इनकी मोटाई का हिसाब हर बार लगाया जा सकता है।
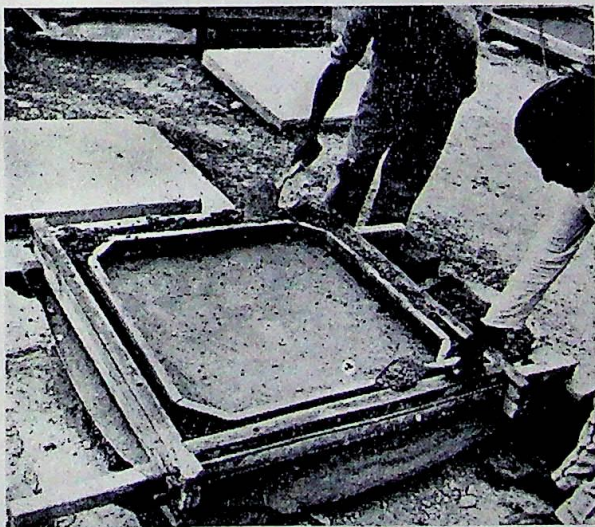
चित्र ४—किनारों की ढलाई

किनारों पर कंकरीट भर दी जाती है। कंकरीट भरने के लगभग एक घंटे बाद सांचे हटा लिये जाते हैं। सिल्ली को दो दिन तक सूखने दिया जाता है और फिर उसे औंधा रख देते हैं।
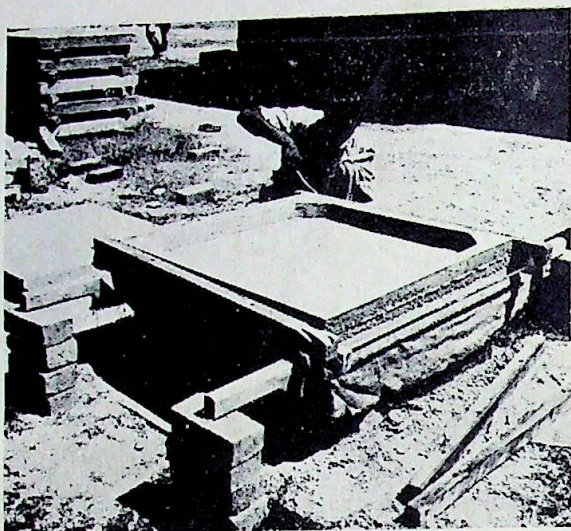
चित्र ५–तैयार खोल

सिल्लियां बनाने के लिये मिट्टी का उपयोग भी किया जा सकता है। पर इन सिल्लियों को उपयोग से पहले पकाना जरूरी होगा। १० फुट लम्बाई और १० फुट चौड़ाई की सिल्लियों के समान बड़ी सिल्लियों को तैयार करने में क्रियाओं का क्रम उपर्युक्त ही रहता है, पर सिल्लियों को दी जाने वाली लोह समर्थन की मात्रा उन पर पड़ने वाले बोझ के आधार पर निश्चित की जाती है। भारी बोझों के लिये पूर्व प्रतिबलित या प्रिस्ट्रेस्ड किनारे इस्तेमाल किये जाते हैं।

सिल्लियों के उपयोग की विधि

ये सिल्लियां छतों, फर्शों और हल्की दीवारों के लिये इस्तेमाल की जा सकती हैं। पर उनका प्रमुख उपयोग इक मंजिली और दुमंजली इमारतों की छतों और फर्शों के रूप में होता है। सिल्लियों को इन कामों के लिये निम्नलिखित प्रकार से इस्तेमाल किया जा सकता है।

अ—सिल्लियों को समुचित अंतरों पर समर्थित कंकरीट के तख्तों पर रखा जा सकता है और किनारे बनाने के लिये उनके ऊपर वहीं सीमेंट डाला जा सकता है।

आ—जहां क्रेनों का उपयोग हो रहा हो, वहां किनारों सहित बड़ी सिल्लियाँ धरती पर ढाली जा सकती हैं और फिर उठाकर खम्बों पर रखी जा सकती हैं।
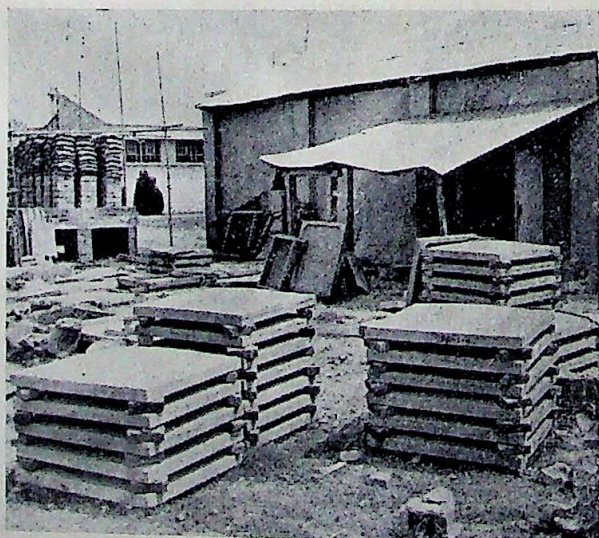
चित्र ६–सूखी सिल्लियों का भंडारन

इ— लम्बे बित्तों या स्पैनों के लिये पूर्व प्रतिबलित या प्रिस्ट्रेस्ड किनारे इस्तेमाल करने में बचत रहेगी।
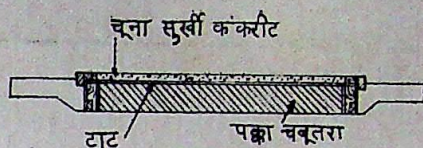
उष्मिक रोधकता और जल सहनीयता

इन सिल्लियों को गर्मी से दूर रखने और पानी में न भीगने का गुण उसी प्रकार दिया जा सकता है जिस प्रकार वह साधारण समर्थित सीमेंट कंकरीट की सिल्लियों को दिया जाता है। इस काम के लिये ४ इंच मोटा चूना, गारा, या कोई बिटुमिनधारी नुस्खा काम में लाया जा सकता है।
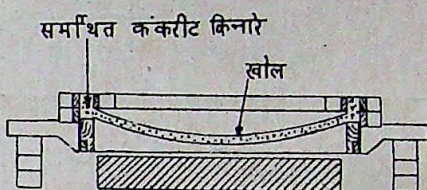
चित्र ७—सिल्ली ढलाई के बगली दृश्य

बचत और लाभ

आजकल समर्थित कंकरीट की ४ इंच मोटी सिल्लियों और ३ इंच मोटे मौसमी बचाव वाली जो छत काम में लाई जाती है उसके मुकाबले में इस प्रकार की छत की लागत में बचत २५.५ प्रति शत, सीमेंट की ४९ प्रति शत और इस्पात की ४६ प्रति शत होती है। इसके अतिरिक्त ऐसी छतों के निर्माण में तख्तेबंदी नहीं करनी पड़ती, चतुर कारीगरों की आवश्यकता नहीं होती और काम जल्दी तैयार होता है।

केन्द्रीय वास्तु अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई यह छत सस्ते मकानों के लिये बहुत अच्छी समझी गई है। गंदी बस्तियों को हटा कर अच्छी बस्तियां बनाने की योजना-समिति ने इनके उपयोग की सिफारिश की है।

हिन्दुस्तान हाऊसिंग फैक्टरी इसे पूर्वप्रतिबलित शहतीरों के बीच में उपयोग के योग्य एक उत्तम भरत समझती है।

इन सिल्लियों को पूर्वप्रतिबलित करके और बिना बीम के इस्तेमाल किया जा सकता है।

ये सिल्लियां मध्यवर्गीय शहरी मकानों के निर्माण में भी उपयोग की जा सकती हैं। ऐसे काम के लिये उन्हें सीमेंट-कंकरीट का बनाया जाना चाहिये। जहां मौसम तेज होता है वहां सिल्ली के भीतर तार की हल्की जाली डाल देनी चाहिये। ऐसा करने से सिल्ली ताप परिवर्तन और सिकुड़ने के कारण खराब नहीं होती।

मानसिक स्वास्थ्य और परमाणु शक्ति

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने परमाणु शक्ति के शांतिमय उपयोगों के मानसिक स्वास्थ्य पहलुओं का अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञों की एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति बनाई थी। इस समिति की रिपोर्ट **वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेशन टैक्निकल रिपोर्ट सीरीज, नं. १५१** नाम से प्रकाशित हुई है और इसका सारांश संसार स्वास्थ्य संगठन क्रौनिकल, जिल्द **१२**, अंक ११ (१९५८), पृष्ठ ३७९, में दिया गया है। इस समिति में जिन विशेषज्ञों ने भाग लिया उनका सम्बन्ध मानसिक चिकित्सा, परमाणु और विकिरण चिकित्सा, जन स्वास्थ्य, सामाजिक मानव शास्त्र और वैज्ञानिक पत्रकारिता से था। उन्होंने संसार भर से प्राप्त उन रिपोर्टों का अध्ययन किया जिनका सम्बन्ध परमाणु शक्ति के विकास के उस भावात्मक प्रभाव से है जो जनता के नित्य प्रति के जीवन में सार्वजनिक बयानों, समाचार-पत्रों की टिप्पिणियों, परमाणु, स्वास्थ्य, राजनैतिक और धार्मिक संस्थाओं को लिखे गये पत्रों तथा चिकित्सा-सम्बन्धी पूछताछ से प्रकट होता है।

संसार के सभी भागों में जन साधारण के मस्तिष्क में परमाणु शक्ति अभी एक डरावनी और रहस्यपूर्ण शक्ति है। इसे जादूई अधिक समझा जाता है और तर्कपूर्ण रीति से इसका विवेचन कम होता है। इससे जिन आशाओं और आशंकाओं का सम्बन्ध है, वे अधिकतर न्याय संगत नहीं है। अध्ययन समिति ने पाया है कि परमाणु विज्ञान की महान वैज्ञानिक और शिल्पिक सफलताओं को कुछ थोड़े से विद्वान् और वैज्ञानिक ही समझ पाते हैं। अधिकतर जनता इस नवीन वैज्ञानिक प्रगति के सामने लगभग उसी स्थिति में है जैसी स्थिति में एक नवजात शिशु अपने को संसार में अनुभव करता है। इस परिस्थिति को कुछ समझने के लिए मनुष्य के शैशव काल से सम्बन्धित प्राचीन और आदिम स्थितियों का अध्ययन किया जा सकता है।

लगभग संसार भर की सभी पौराणिक कथाओं में यह झलक पाई जाती है कि मनुष्य ज्ञान और शक्ति की अपनी खोज में चिन्तित रहा है। उदाहरण के लिए, जब प्रोमीथियस ने अग्नि को, जिसे रखने का अधिकार केवल देवताओं को ही था, चुराया, तो उसने इस विशेष अधिकार को समझा ही नहीं, वरन् मनुष्यों के उपयोग के लिए उसे अपने वश में भी कर लिया और इस धृष्टता के काम के लिए उसे भारी दण्ड दिया गया। पंडोरा ने खेल में ऐसी शक्तियों को मुक्त कर दिया जिनको वह नियन्त्रित न कर सकी। उसने भी देवताओं के विशेष अधिकार में हस्तक्षेप किया, पर क्योंकि उसका काम आकस्मिक और स्वार्थ रहित था, इसलिये मनुष्य के साथ

आशा रही आई। पर जब फाउस्त ने दैवी शक्ति प्राप्त करने के लिए शैतान का आवाहन किया तब उसके काम में कुछ भी आकस्मिकता न थी और इसलिए उसे कठोर दण्ड मिला। ज्ञान के साथ पाप और दण्ड का सम्बन्ध जितनी स्पष्टता से "ईडन के बाग" की कथा में मिलता है उतना किसी दूसरी जगह नहीं पाया जाता। पर यह बात और भी बहुत से स्थानों पर मिलती है। उदाहरण के लिए, एक पुरानी मिश्री कहावत है कि जब मनुष्य यह जान लेगा कि तारों को क्या चलाता है तब स्फिंक्स हंसेगा और जीवन नष्ट हो जायेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि धृष्टता करने पर मनुष्य के लिये दण्ड व्यवस्था की भावना लगभग सभी जगह पाई जाती है और इसकी एक आकर्षक उपमा सम्पूर्ण मानव जाति के उस व्यापक अनुभव में मिलती है जिसे हम "शिशुता" कहते हैं।

विकास की दृष्टि से शिशु होने का अर्थ है असहाय होना, और ऐसी शक्तियों पर निर्भर करना जो लगभग अनन्त लाभ पहुंचा सकती हैं और अन्तिम दण्ड दे सकती हैं। जो बच्चे माता-पिता के प्रति उदण्डता बरतते हैं उनके विचार और भावना उसी प्रकार हो जाने की सम्भावना है, जैसे कि आदिम मनुष्यों के विचार और भावना थीं। परमाणु शक्ति के प्रति लोगों की मानसिक स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही है।

विकिरण से मस्तिष्क को हानि

तरह-तरह के पदार्थों से तेज की जो किरणें निकलती हैं उनको विकिरण कहते हैं। अध्ययन समिति ने मस्तिष्क की क्रिया पर विकिरणों द्वारा डाले जाने वाले रोगकारी प्रभावों के प्रश्न की भी जांच की है। इस विषय में जानकारी बहुत कम है, और अनुसंधान सूचनाओं के अन्तर्राष्ट्रीय वितरण के विकास करने की आवश्यकता अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है।

निर्विरोध रूप से जो तथ्य सामने आया है, वह यह है, कि हमारे शरीर का चेता पदार्थ या नरवस टिशू यद्यपि हानिकर प्रभावों के प्रति अत्यन्त प्रतिरोधी टिशुओं में से एक है, फिर भी उसे घातक सीमा से नीचे विकिरण की मात्रा गम्भीर हानि पहुंचा सकती है। जन्तु भ्रूणों और जन्तुओं के बच्चों पर जो परीक्षण किये गये हैं उनसे इस बात का समर्थन होता है कि विकास के दिनों में चेता पदार्थ विकिरण से जल्दी प्रभावित हो जाता है। यह दिखाया गया है कि १००–२०० रौन्तजन जैसी थोड़ी मात्रायें भी मस्तिष्क के निर्माण में बड़े विकार उत्पन्न कर देती हैं। पर वयस्क मस्तिष्क पर, ऐसा जान पड़ता है कि, विकिरण का अपवाद के तौर पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। अध्ययन समिति इस नतीजे पर पहुंची है कि परमाणु शक्ति के शान्तिमय उपयोगों में विकिरण की जिस थोड़ी मात्रा का सामना होता है, उससे मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव अभी तक अल्प या महत्वहीन पाये गये हैं।

परमाणु शक्ति का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

अध्ययन समिति ने उन विषमताओं की भी जाँच की जो परमाणु शक्ति के उपयोग से समाज में आयेंगी। उन्नत देशों में इससे एक दूसरी औद्योगिक क्रान्ति आ सकती है और उससे

वहां पर जो सामाजिक संतुलन और स्थिरता, अक्सर बहुत मूल्य चुका कर, प्राप्त की गई है, नष्ट हो सकती है। यदि परमाणु शक्ति के साथ दूसरे औद्योगिक आविष्कारों को, जिन्होंने पहले ही परिवर्तन की गति बहुत तेज कर दी है, भी साथ में ले लिया जाये तो यह प्रभाव बहुत बड़ा हो सकता है। रिपोर्ट का कहना है कि समाज परिवर्तन की गति को एक सीमा तक ही सहन कर सकते हैं। यदि गति इस सीमा से बढ़ जाती है तो उससे समाज में कुछ हद तक विश्रृङ्खलता आ जाती है, यद्यपि इस बारे में जानकारी अभी पूर्ण नहीं है, पर ऐसा नहीं मालूम होता कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में अधिक विश्रृङ्खलता आ जाने से मानसिक विकार अधिक व्यापक हो जायेंगे।

इस बारे में कुछ अधिक चिंता प्रकट की गई है कि अल्प विकसित कहलाने वाले क्षेत्रों में जब परमाणु शक्ति का उपयोग आरम्भ होगा तो औद्योगीकरण की गति बढ़ जायेगी और उससे वहां की वर्तमान सामाजिक समस्याओं में काफी वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त और खतरे भी हैं।

जहाँ लोगों को बढ़ा-चढ़ा कर आशायें दिलाई गई हैं वहाँ यदि परमाणु शक्ति के कारखाने उपयुक्त नहीं पाये गये अथवा उनसे तुरन्त लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने का चमत्कार नहीं बन पड़ा तो लोगों की भ्रांति नष्ट होगी और वे निराश हो सकते हैं। ऐसी निराशा की प्रतिक्रिया गंभीर हो सकती है और वह उन जन-समूहों के प्रति वैर-भाव का रूप ले सकती है जो परमाणु शक्ति से अधिकतर लाभ उठा रहे हैं।

संसार स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञों का विचार है कि इस सम्बन्ध में बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा, कि योजना और विकास के काम में मानवीय तत्वों की ओर कितना ध्यान दिया जाता है।

निराधार भय और निराधार आशायें

परमाणु शक्ति के उदय से लोगों में महत्वपूर्ण भावात्मक प्रतिक्रिया हुई है। यह काफी सीमा तक शिल्पिक परिवर्तनों के दूसरे रूपों द्वारा उत्पन्न की हुई प्रतिक्रियाओं के समान है। पर साथ ही, यह कुछ तो उन परिस्थितियों (आरम्भिक परमाणु विस्फोट) के कारण जिनमें परमाणु शक्ति का उदय हुआ है और कुछ इस शक्ति की अपनी प्रकृति के कारण, अक्सर रोग का रूप ले लेती है। अध्ययन समिति इस बात पर सहमत हुई कि वर्तमान स्थिति में यह कदाचित मानसिक स्वास्थ्य समस्या का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है।

"लोगों की नित्य प्रति की बातचीत में परमाण्विक बातों के प्रति जनता की भावात्मक प्रतिक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। अक्सर मौसम की खराबी और फसलों की हानि के लिए परमाणु बम परीक्षणों को उत्तरदायी ठहराया जाता है। परमाणु धूलि, परमाण्विक व्यर्थ को निरापद रीति से न फेंके जाने और पानी तथा दूध में रेडियम-धर्मी पदार्थों के मिलने के भय, उनके द्वारा

बांझपन आने और प्रजनन क्रिया पर हानिकर प्रभाव पड़ने के भय आदि के रूप में जनता की चिंता स्पष्ट दिखाई देती है। ये भय, खतरों और बचाव के उपायों के सम्बन्ध में की जाने वाली सरकारी घोषणाओं के विपरीत हैं।"

इस सिलसिले में विशेषज्ञों ने "मुक्त-तिरती चिंता" और उन विभिन्न रीतियों का विवेचन किया जिनके द्वारा व्यक्ति, अपनी चेतना में उसके असह्य हो जाने पर, उसका सामना करता है। उदाहरण के लिए "विस्थापन" की क्रिया में, चिंता का सम्बन्ध उसके वास्तविक कारण को छोड़ कर, एक दूसरी ही वस्तु से ही जुड़ जाता है—ऐसी वस्तु से, जिसमें स्वयं चिंता उत्पन्न करने का गुण हो सकता है, पर जिसका इस चिंता से कोई सम्बन्ध नहीं होता। किसी बात को तर्क समर्थित करना भी इस विस्थापन का एक विशेष रूप है। ऐसी क्रिया में न्याय असंगत भावनाओं का समर्थन संगत दीखने वाले कारणों से किया जाता है। और अन्त में, "क्षति से अधिक पूर्ति" "साहस बांधे रखने के लिए सीटी बजाने की क्रिया" होती है।

परमाणु शक्ति के चिंता-उत्पादक गुण का कारण विकिरणों की विशिष्ट प्रकृति है। वे न देखे जा सकते हैं, न सुने जा सकते हैं, न चखे जा सकते हैं, न सूंघे जा सकते हैं, न छुए जा सकते हैं (जहां तक व्यक्ति का सम्बन्ध है), न नियंत्रित किये जा सकते हैं और ऐसे स्रोत से निकलते हैं जिसकी लघुता लगभग असीम है। परमाणु शक्ति के साथ जिन डरों का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, शायद उनमें सबसे गम्भीर और रहस्यपूर्ण यह है कि उससे जीवों में प्रतिक्रिया की एक जंजीर चल निकलेगी। रेडियम धर्मी धूलि या परमाणु व्यर्थ, पानी, धरती, मछली, पौधों, जन्तुओं और अन्त में मनुष्यों, उनकी सन्तानों और उनकी सन्तान की सन्तानों के सम्पर्क में आकर उन्हें हानि पहुंचायेगा।

अध्ययन समिति ने इस रोगमय भावात्मक प्रतिक्रियाओं के विवेचन में एक कुछ आश्चर्यजनक बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है। वह बात यह है कि जिस प्रकार की अतिकल्पनायें बिजली, रेडियो और रैडार जैसी यांत्रिक शक्ति के उपयोगों के सम्बन्ध में मिलती थीं वैसी परमाणु शक्ति के सम्बन्ध में मानसिक रोगियों की भांति योजनाओं में नहीं पाई गई। समिति का विचार है कि इस नई बात का आगे और अध्ययन किया जाना चाहिए।

वैज्ञानिकों, अधिकारियों और जन साधारण के बीच अन्तर्क्रियायें

यह स्वाभाविक ही है कि भ्रम और भय से घिरी हुई साधारण जनता का वैज्ञानिक अथवा सरकारी बयानों में विशेष विश्वास नहीं रह गया है। जनता के सामने अक्सर दो विरोधी बातें आती हैं। ये वैज्ञानिकों के मतभेदों को व्यापक रीति से प्रकाशित करने के कारण उभरती हैं। ये मतभेद केवल परमाणु शक्ति के बारे में ही नहीं, पोलियो की वैक्सीन और तमाखू के कैन्सर का प्रभाव जैसे प्रश्नों के बारे में भी हैं। अध्ययन समिति का कथन है कि जब वैज्ञानिक एक ओर तो अपनी वैज्ञानिक क्षमता से सीमित बयान देते हैं और दूसरी ओर ऐसी बातें कहते हैं जो ऊपर से तो वैज्ञानिक मालूम होती हैं पर वास्तव में मूल्यांकन और नीति निश्चयन से सम्बन्ध रखती हैं तो इससे स्थिति के स्पष्ट होने में विशेष सहायता नहीं मिलती।

जनता पिछले दो महायुद्धों के अनुभवों के बाद राजनैतिक प्रचार पर आसानी से विश्वास नहीं करती। हो सकता है कि कुछ सीमा तक इस कारण भी परमाणु शक्ति के विषय में कही हुई सरकारी बातों पर जनता का विश्वास न जमता हो।

वैज्ञानिकों और राज-नेताओं के सम्बन्ध भी चिन्ता उत्पन्न करते हैं। इसलिए, कि यह निश्चित नहीं है कि शक्ति किसके हाथ में है और वह कैसे इसका उपयोग करता है।

"एक अर्थ में राजनैतिक नेता वैज्ञानिक पर शासन करता है पर दूसरे में वह वैज्ञानिक पर निर्भर होता है और इसलिये उसके वश में होता है। परमाणु शक्ति के उदय ने अन्तिम ताकत को राजनैतिक नियन्त्रण के नीचे काम करने वाली सेवाओं के हाथ से हटा लिया है और वैज्ञानिक के हाथों में दे दिया है। वैज्ञानिक एक असैनिक है और सीधा सरकारी नौकर नहीं होता; और वैज्ञानिक होने की हैसियत से उसकी पहली वफादारी वैज्ञानिक सत्य के प्रति होती है। ऐसी सामाजिक संस्थायें विकसित नहीं हुई हैं जो उसे व्यक्तिगत रूप से असैनिक ताकत के नियन्त्रण में रख सकें। वैज्ञानिक की हैसियत से उसे अनुशासन और आज्ञा पालन का विशेष प्रशिक्षण नहीं प्राप्त होता। इसलिए यह अस्वाभाविक नहीं है कि राजनैतिक नेताओं में वैज्ञानिकों के प्रति तीव्र विरोध भाव उत्पन्न हो जाता है और इसलिए वे वैज्ञानिकों के अत्यधिक विरोध करने पर भी वैज्ञानिक स्थिति को नियन्त्रित करने क प्रयत्नों में ऐसे नियम-कानून बनाते है जिनका स्थिति की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

यह रिपोर्ट इस बात की ओर संकेत करती है कि ऐसे राजनैतिक नेता बहुत कम हैं जिन्हें ऐसा वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है जिससे वे वैज्ञानिक काम के अन्तिम अर्थों को समझ सकें। फलस्वरूप एक आम घबराहट का जन्म होता है और यह सन्देह होता है कि राजनैतिक नेता स्थिति का स्वामी होने के बजाय, वास्तव में, वज्ञानिकों और आगामी चुनाव के बीच में फंसा हुआ है।

समाचारपत्र

क्योंकि जनता को परमाणु शक्ति विकास के बारे में जानकारियां मुख्यतया समाचारपत्रों के द्वारा प्राप्त होती हैं इसलिए इस विषय में पत्रकारों का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण मालूम होता है। अध्ययन समिति इस बात से प्रभावित हुई है कि परमाणु शक्ति के समाचारों के सम्बन्ध में पत्रकारों की ईमानदारी का सामान्य स्तर काफी ऊँचा रहा है, पर उसे इस बात का दुःख है कि ऐसी खबरें देने के लिए यदि समाचार गम्भीर और आशामय होता है, तो भी आमतौर से सनसनीदार शीर्षक काम में लाये जाते हैं और इनका प्रभाव टिकाऊ होता है। समाचारपत्रीय सिद्धान्त है कि बुरी खबर की समाचारिता अधिक होती है, व इसका मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक अवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

मानसिक स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी कार्य

संसार स्वास्थ्य संस्था के विशेषज्ञों ने अनुभव किया है कि परमाणु युग के उदय से परिवर्तनशील परिस्थिति में आधारभूत भावों की जटिलता को, विचार और कार्य के नेताओं में,

अधिक व्यापक रीति से स्वीकृति मिलनी चाहिये। पहला काम यह है जिसे परिवर्तन की संस्कृति की स्थापना कह सकते हैं। यह एक ऐसी परिस्थिति होगी जिसमें परिवर्तन का काम बिना किसी उथल-पुथल के हो सकेगा। इस संस्कृति को लाने के लिए बच्चों की ओर विशेष ध्यान देना होगा। उन्हें इस प्रकार पालना होगा जिससे कि वे सुरक्षा के अभाव को सहन कर सकें और वास्तविकता का सामना कर सकें। परिवर्तन की इस संस्कृति को चिंता और घृणा से मुक्त ऐसे व्यक्ति उत्पन्न करने होंगे जिनमें आत्मविश्वास हो और जो दूसरों के प्रति अपनी जिम्मेदारी अनुभव करें। इसके अतिरिक्त वे लोग जो सार्वजनिक जीवन में जिम्मेदारी के स्थानों पर हैं—डाक्टर, शिक्षक, धर्मगुरु और राज्याधिकारी—उन्हें मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक बातों की शिक्षा दी जानी चाहिए।

जहाँ तक स्थानीय कार्य का सम्बन्ध है इस समिति ने एक ऐसी योजना की रूपरेखा का विवेचन किया है जिसके अनुसार समाज को परमाणु शक्ति के विषय में शिक्षा दी जाये। विचार यह है कि छोटे दल बनाये जायें जिनमें प्रत्येक में—उदाहरण के लिए—एक मानसिक चिकित्सक, एक मनोवैज्ञानिक, एक समाज वैज्ञानिक और एक पत्रकार हो। ये दल स्थानीय परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे और नये परमाणु कार्यों की योजना बनाने और वहां की जनता द्वारा उसे स्वीकृत कराने में सहायता देंगे।

अध्ययन समिति ने मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में किये जाने वाले अनुसंधानों और कार्यों, परमाणु स्थापनाओं को बनाने के स्थानों, परमाणु शक्ति के उत्पादन और विकिरणों की चिकित्सा-उपयोग के सम्बन्ध में भी विशिष्ट सुझाव दिये हैं।

अन्त में समिति ने कहा है कि उसे जो बातें मिली हैं वे किसी प्रकार आशंका उत्पादक नहीं हैं। यद्यपि वे इतनी ठोस है कि अधिकारियों को उनकी ओर ध्यान देना ही चाहिए। समिति ने आशा प्रकट की है कि लोग यह बात स्वीकार करने के लिए तैयार होंगे कि, जिन विज्ञानों का सम्बन्ध लोगों के व्यवहार से है वे मानव जाति को परमाणु शक्ति की आवश्यकतानुसार ढालने में बहुत सहायक हो सकते हैं। इससे परिवर्तन की क्रिया यथासम्भव दुख और हानि से रहित हो जायेगी और मनुष्य की आविष्कारक प्रतिभा ने जिस बीज को बोया है वह उसके उत्तम फलों को चख सकेगा।

विमर्श

एडवान्सेज़ इन चीज़ टैक्नौलोजी (पनीर प्रौद्योगिकी में प्रगतियां), खाद्य कृषि संगठन कृषि अध्ययन नं. ३८; लेखक, फ्रैंक वी. कोसिकोवस्की और जर्मन मोकोट; प्रकाशक संयुक्त राष्ट्रों का खाद्य और कृषि संगठन, रोम, १९५८, पृष्ठ संख्या २३६, मूल्य २ डालर या १० शिलिंग; भारत में ओरियन्ट लांगमैन्स लिमिटेड अथवा आक्सफोर्ड बुक एंड स्टेशनरी कम्पनी, सिंधिया हाउस, नई दिल्ली; या १७ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता, से प्राप्य।

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजी में है। पनीर एक ऐसा पोषक और स्वादिष्ट खाद्य है जो संसार भर में इस्तेमाल किया जाता है। यह गाय भैंस बकरी और ऊंट के दूध से बनाया जाता है और कई महीनों तक नहीं बिगड़ता। प्रत्येक इलाके की पनीर की स्वादगंध अक्सर अलग-अलग होती है। पनीर चाहे पुराने तरीके से घर में बनाई जाये, चाहे आधुनिक बड़े कारखानों में बने, उसके निर्माण में जो ६ क्रियायें अनिवार्य होती हैं, वे हैं: (१) दूध का जमाना, (२) दही का फाड़ना, (३) दही का उबालना, (४) पानी निचोड़ना, (५) नमक देना और (६) दही का दबाना। इन क्रियाओं से ऊपर एक विशिष्ट जटिल और रहस्यमय विधि और होती है जिसे पकाना कहते हैं। इस क्रिया में पनीर को तैयार करने के लिये विभिन्न जीवाणु और फफदावक भाग लेते हैं।

संयुक्त राष्ट्रों के खाद्य और कृषि संगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय डेरी फैडरेशन के सहयोग से सितम्बर १९५२ में फ्रांस में एक बैठक का आयोजन किया था। इसमें पनीर बनाने के विज्ञान और व्यवहार में हुई हाल की प्रगतियों पर विचार विनिमय हुआ था। यद्यपि यह सम्मेलन क्षेत्रीय था, पर इसमें जिन विषयों पर बातचीत की गई थी वे उन सब देशों के लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं जहां पनीर बनाई जाती है। इस पुस्तक के लेखकों ने इस सम्मेलन में भाग लिया था और वहां जो विवेचनायें हुई थीं उन्होंने इस पुस्तक की सामग्री को बहुत प्रभावित किया है। यह पुस्तक मुख्य रूप से उन पाठकों के लिये तैयार की गई है जो दूध उद्योग के जीवाणुशास्त्र और जीवरसायनिकी के प्रारम्भिक बातों से परिचित हैं।

(शेष पृष्ठ ४४८ पर)

सूचना-समाचार

कच्चे पपीते से एल्यूमीनियम क्लोराइड अवक्षेपण द्वारा पैक्टीन

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर, में एल्यूमीनियम क्लोराइड अवक्षेपण द्वारा कच्चे पपीतों से पैक्टीन तैयार करने की एक विधि विकसित की गई है। इस प्रकार तैयार की गई पैक्टीन बढ़िया होती है और उस पर लागत कम आती है। यह जैली आदि बनाने के काम में लाई जा सकती है। इसकी निर्माण विधि नीचे दी जा रही है।

हरे, कच्चे, पूर्णतया प्रौढ़ पपीतों को धोकर मशीन में कीमा कर लिया जाता है। इस कटी हुई लुगदी को दो बार ठण्डे पानी से धोया जाता है जिससे अधिकतर घुलनशील ठोस अलग हो जाते हैं। इसके बाद उसे दबाया जाता है और फिर चार बार ०.७३ प्रति शत नमक के तेजाब से खौलते ताप पर प्रत्येक बार आध घण्टे तक निसारित किया जाता है। प्रत्येक निसारण के बाद तरल को दबा कर निकाल दिया जाता है और तुरन्त ठण्डा कर लिया जाता है। मिश्रित निसारों से पैक्टीन को १ अणुक घोल के रूप में ०.५ प्रति शत सान्द्रता में एल्यूमीनियम क्लोराइड मिलाकर, अवक्षिप्त कर लिया जाता है। इस अवक्षेपण के लिये सर्वोत्तम पी-एच ३.८ से ४ तक पाया गया है। अवक्षिप्त एल्यूमीनियम पैक्टीनेट को २ बार क्रमशः ४० और ५० प्रति शत अल्कोहल से धोया जाता है। इस अल्कोहल में ५ प्रति शत हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला होता है जो एल्यूमीनियम लवण को अलग करता है। इसके बाद अवक्षेप को तेजाब से अलग करने के लिये क्रमशः ६०, ७०, और ८० प्रति शत अल्कोहल से धोया जाता है। अन्त में उसे ५०° सें. पर ३ घंटे के लिये सुखाया जाता है।

इस विधि से जो पैक्टीन तैयार होती है उसका रंग मंद सफेद होता है उसमें पपीते की स्वाद गंध नहीं होती और वह २०८ जैली ग्रेड का होता है। क्योंकि इस विधि में छिलका जो फल का लगभग १८-२० प्रति शत होता है, उतारना आवश्यक नहीं है, इसलिये माल बेकार नहीं जाता और छीलने में व्यर्थ शक्ति नहीं लगानी पड़ती। लुगदी की आरम्भिक धुलाई में लगभग ५.९ प्रति शत घुलनशील ठोस निकल जाते हैं। पैक्टीन की हानि प्रायः नगण्य होती है।

यह पाया गया है कि अधिकतम पैक्टीन दूसरे और तीसरे निसारों में प्राप्त होती है। जैली ग्रेड की पैक्टीन का निसारण पहले से तीसरे निसार तक बढ़ता जाता है और चौथे में

कम हो जाता है। यदि निसारों को २-५° सें. पर ४ दिन रखने के बाद अथवा २०-२५° सें. पर ३५ भाग प्रति लाख सल्फर डायआक्साइड मिलाकर उतने ही समय रखने के बाद पैक्टीन निकाली जाती है तो उसके गुण में कोई खराबी नहीं आती। पर यदि निसारों में ३५ भाग प्रति लाख और ७० भाग प्रति लाख सल्फर डायआक्साइड मिलाकर २०-२५° सें. पर एक सप्ताह के लिये रखा जाता है तो प्राप्त होने वाली जैली ग्रेड पैक्टीन घटिया किस्म की होती है।

इस एल्यूमीनियम क्लोराइड अवक्षेपण विधि में पुराने अल्कोहल (प्रति पौंड पैक्टीन के लिये ३९.० लिटर) अवक्षेपण विधि की अपेक्षा कम अल्कोहल (प्रति पौंड पैक्टीन के लिये ८.५ लिटर) की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इस विधि में निर्वात सांद्रक जैसे मंहगे उपकरण की भी जरूरत नहीं होती।

जर्राही प्लास्टर

चिकित्सा के काम में जर्राही प्लास्टर एक बहुत जरूरी वस्तु है। एक अच्छे प्लास्टर में जो सामान्य गुण होने आवश्यक हैं उनमें से एक यह है कि उसे ४–७ मिनट के भीतर शीघ्र जम जाने वाला होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसकी दाब सहने की क्षमता १,४०० पौंड प्रति वर्ग इंच और तनाव शक्ति ३२५ पौंड प्रति वर्ग इंच होनी चाहिये। इण्डियन फार्माकोपियल लिस्ट में ऐसे प्लास्टर के लिये जो विशिष्टतायें निश्चित की गई हैं, बिल्कुल उनके अनुसार गुणवाला जर्राही प्लास्टर कठिनता से ही मिलता है।

नई दिल्ली के लघु उद्योग सेवा संस्थान ने जर्राही प्लास्टर बनाने की एक नई विधि का विकास किया है। इस विधि में शुद्ध किस्म के जिप्सम को १०० मेश का पीस लिया जाता है। इसके बाद उसे अच्छी तरह ०.५ प्रति शत साधारण फिटकरी के साथ मिलाया जाता है। इस काम के लिये फिटकरी के एक ज्ञात सान्द्रता के जलीय घोल को जिप्सम चूर्ण के ऊपर छिड़क कर मिला दिया जाता है। जिप्सम के चूर्ण को फिर सुखाया जाता है और उसे खुली कढ़ाई में अथवा केतली की आकृति वाले पात्रों में भूना जाता है। इन पात्रों को कैलसाइनर कहते हैं। यदि कैलसाइनरों में निश्चित ऊँचाई पर ताप नियन्त्रित रखने का प्रबन्ध होता है तो माल अच्छा तैयार होता है।

ये केतलियां खड़ी बेलनाकार होती हैं। उनकी पेंदी भारी इस्पात की और ऊपर की फूली हुई होती हैं। माल के निचले भाग में गैसों के गुजरने की सुविधा के लिये अक्सर चार पड़े नल लगा दिये जाते हैं। जिन केतलियों को पत्थर के कोयले से गर्म किया जाता है उनके चूल्हे में आग केतली की पेंदी से ६–७ फुट नीचे जलाई जाती है। गर्म गैसें ऊपर तक केतली के चारों ओर लगी हुई आड़ी नलियों में होकर केतली को गर्म करती हैं। एक खड़ी छड़ में माल को हिलाने के लिये मजबूत हत्थे लगे होते हैं। पेंदी के पास जो हत्थे होते हैं, उनमें जंजीरें बंधी होती हैं। वे केतली की पेंदी पर घिसटती हैं और माल को हिलाती रहती हैं। इस प्रकार हिलाया जाता हुआ माल धीरे-धीरे १२० से १३०°सें. तक गर्म किया जाता है। ताप को स्थिर रख कर माल को गर्म करना उस समय तक जारी रखा जाता है, जब तक वह तेजी से फदकता रहता है और उसमें से पानी का लगभग १½ अणु नहीं निकल जाता।

जब यह क्रिया पूर्णता के निकट पहुंचती है, फदकना बंद हो जाता है, माल बैठ जाता है और ताप तेजी से बढ़ने लगता है। अंत में ताप को, जर्राही प्लास्टर तैयार करने के लिये, १६०°सें. तक पहुंचा दिया जाता है। इसके बाद प्लास्टर को ठण्डा किया जाता है, उसे केतली कैलसाइनर में से निकाला जाता है, छाना जाता है और हवाबंद थैलों में भर दिया जाता है।

अदरक-गलन के लिए चैस्टनट मिश्रण

अमोनियम कार्बोनेट ११ भाग और कापर सल्फेट २ भाग मिलाने से जो मिश्रण तैयार होता है उसे चैस्टनट मिश्रण कहते हैं। इस्तेमाल करने से पहले इन दोनों पदार्थों को चूर्ण रूप में अच्छी तरह मिलाकर एक डिब्बे में भर देते हैं और डिब्बे को २४ घंटे तक रखा रहने देते हैं। इसके बाद यह मिश्रण उपयोग के लिए तैयार हो जाता है। इसमें से एक औंस मिश्रण निकाल कर २ गैलन पानी में घोल लेते हैं। यह घोल अदरक गलन क उपचार के लिए इस्तेमाल किया जाता है जिन पौधों में रोग लगा होता है उन पर लगभग ६ औंस घोल डाला जाता है।

इस मिश्रण के उपयोग का सबसे अच्छा तरीका यह समझा जाता है कि जब अदरक के टुकड़ों को गढ़ों में बोया जाये तो टुकडे और उसकी आस-पास की धरती पर यह दवा छिड़क दी जाये। इससे धरती और बीज दोनों इस रोग के फफूंदों से मुक्त हो जाते हैं। समझा जाता है कि इस प्रकार के उपयोग से शत प्रति शत लाभ होता है। यह भी कहा गया है कि यह मिश्रण उर्वरक का भी काम करता है। अमोनियम कार्बोनेट और कापर सल्फेट की पारस्परिक रासायनिक क्रिया के अमोनियम सल्फेट बनता है और वह पौधे द्वारा खाद के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

बंगाली केले की सर्वोत्तम पौध

पश्चिमी बंगाल में केले की *चम्पा* किस्म आमतौर पर बोई जाती है। इसकी पौध लगाने के लिये किसान आमतौर पर ५ फुट ऊंचा कल्ला पसंद करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस ऊंचे कल्ले को पशु हानि नहीं पहुंचा पाते, जबकि छोटे कल्लों को उनसे हानि पहुंच जाती है। पर देहात में, विशेषतया वर्षा के दिनों में, कल्लों को ढोने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है और इस काम पर लागत अधिक आती है। केला अनुसंधान योजना के चिनसुरा केन्द्र के के. सी. भान और पी. के. मजूमदार ने [**इण्डियन जरनल आफ एग्रीकल्चरल साइंस**, २८ (१९५८), १४१] कृष्णानगर की अच्छी तरह निचुड़ी दरियाई चिकनी मिट्टी की धरती में *चम्पा* किस्म के केले की पौधें लगाने के सम्बन्ध में परीक्षण किये हैं। इन परीक्षणों में ३, ४ और ५ फुट ऊंचे तीन-तीन कल्ले लिये गये थे। प्रत्येक ऊंचाई के एक कल्ले की केवल पत्तियां, दूसरे की एक फुट फुनगी और तीसरे की दो फुट फुनगी काट दी गई थी। इसके बाद उन्हें उचित रीति से बोकर एक सी दशा में रखा गया था। उनकी वृद्धि को नापा गया था और उनसे प्राप्त होने वाले फलों की मात्रा तथा उनकी उत्तमता का अध्ययन किया गया था।

इस परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि ५ फुटे कल्लों की बढ़त केवल आरम्भ में ही अधिक होती है। बाद में उसमें और दूसरे छोटे कल्लों की बढ़त में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। ऊपर के सिरे काट देने से केवल ५ फुटे और

३ फुटे कल्लों की वृद्धि पर ही एक अस्थायी प्रभाव पड़ा। ४ फुटे कल्लों पर इस क्रिया का विशेष असर नहीं पाया गया। पर पौधों के प्रौढ़ होने पर, लगाने के समय से लेकर फसल के समय तक, ऊंचाई और चोटी काटने का प्रभाव स्पष्ट देखा गया। पत्ती काटे गये ५ फुटे कल्लों में सब से पहले फूल आये। जिस पांच फुटे कल्ले की फुनगी २ फुट काट दी गई थी वह देरी से प्रौढ़ हुआ जबकि ३ फुटे और ४ फुटे कल्लों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। कल्लों की ऊंचाई और कटाई से फलों की मात्रा और गौ में लगे गुच्छों की संख्या में कोई कमी नहीं आई। गुच्छों में केलों की संख्या परिवर्तनशील पाई गई।

इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जहां ढुलाई की समस्या हो वहाँ ५ फुट कल्ले को काटने के बजाय ३ या ४ फुटे कल्ले इस्तेमाल किये जाने चाहियें। ५ फुटे कल्लों को काटने से फूल देरी में आते हैं और इससे निश्चय ही हानि पहुंचती है। समझा जाता है कि *चम्पा* के बारे में इस परीक्षण से जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे *मर्तभान, कटहली, बेउला* जैसी बंगाल में आमतौर से बोई जाने वाली दूसरी ऊँचे पौधों की किस्मों पर भी लागू हो सकते हैं।

मछली संरक्षण के लिये औरियोमाइसीन

औरियोमाइसीन को क्लोरटैट्रासाइक्लीन भी कहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरीका के खाद्य और औषधि प्रशासन ने यह बात स्वीकार कर ली है कि बिना तैयार की हुई मछलियों की संरक्षा के लिये क्लोरटैट्रासाइक्लीन इस्तेमाल किया जा सकता है। इस पदार्थ को पिछले चार वर्षों से बिना पके मुर्गी पदार्थों की संरक्षा के लिये इस्तेमाल किया जा रहा है। इससे मनुष्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव के विषय में काफी जानकारी प्राप्त हो गई है। मछियारे इस ऐण्टीबायोटिक का उपयोग मछली को डुबोने के लिये घोल के रूप में अथवा बर्फ में करेंगे। जो खाद्य पदार्थ इस ऐण्टीबायोटिक से उपचारित किये जाते हैं उनमें से यह ऐण्टीबायोटिक पकाने पर पूरे तौर से अलग नहीं होता। इस विषय में वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने जो परीक्षण किये हैं उनसे तह पता चलता है कि १० लाख भाग में ५ भाग ऐण्टीबायोटिक बच रहने पर हानिकर नहीं होता; और यह सीमा निरापद मानी गई है। इससे उन व्यक्तियों पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता जो साधारणतया ऐण्टीबायोटिकों को सहन नहीं कर सकते।

काजू का पौधाई प्रसार

साधारणतया काजू को बीजों द्वारा प्रसारित किया जाता है। क्योंकि काजू बेकार भूमि की फसल समझी जाती है इसलिए उसके बढ़िया और उपजाऊ पौधे तैयार करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। काजू के बीज बोकर जो पौधे प्राप्त किये जाते हैं उनके गुण पर कोई नियंत्रण नहीं होता। अच्छे जान पड़ने वाले बीज से भी खराब पौधे पैदा हो सकते हैं। काजू के बागानों में उपज के विचार से तरह-तरह के पौधे होते हैं। ऐसे पौधे जिनसे एक सेर काजू बादाम कठिनता से मिलता है और जिनसे लगभग २० सेर माल प्राप्त होता है, आमतौर से पाये जाते हैं। पर कुछ स्थानों पर ऐसे वृक्ष भी हैं जिनसे ढाई मन तक काजू बादाम मिलता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के बागानों से जो काजू बादाम मिलते हैं वे आकार में एक से नहीं होते। उनसे गिरी निकालने में कठिनाई होती है और वे कम दामों पर बिकते हैं।

बढ़िया किस्म के काजू बादाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि काजू के पौधों का गुण एक-सा रहे और वे सदा बढ़िया उपज दें। यह फल काजू के वृक्ष को पौधाई प्रकार से उपजा कर ही प्राप्त किया जा सकता है। इस काम के लिए काजू के उत्तम वृक्षों से पौध तैयार करने का काम वी. एन. माधवराव द्वारा [**इण्डियन जरनल श्राफ एग्रीकल्चरल साइंस**, २८, भाग २ (१९५८), १८१] मंगलौर के काजू बादाम अनुसंधान केन्द्र में किया गया है। ये पौध काजू के वृक्षों की टहनियों में अण्टा बांधने की विधि से तैयार की जाती है। यह वही विधि है जिससे लीची और नीबू के वृक्षों की पौधें तैयार की जाती हैं।
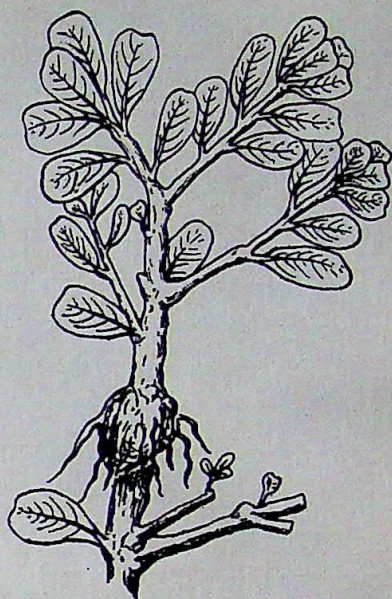
अण्टा बांधने का काम उसी वर्ष की अथवा एक वर्ष पुरानी टहनी में किया जा सकता है। हाथ की छोटी उंगली के बराबर मोटी टहनी में गांठ के नीचे चारों ओर से $\frac{1}{2}$ – $\frac{3}{4}$ इंच की चौड़ाई में छिलका हटा देते हैं। नीचे ऊपर से छाल बढ़कर आपस में जुड़ न जाये इसलिये छिले स्थान पर डोरी या नारियल के रेशे लपेट देते हैं। इसके बाद गीली काई को छिले भाग के चारों ओर लपेटते हैं और उस पर पोलीथीन (एल्काथीन) की १५० गेज का टुकड़ा लगा देते हैं। पोलीथीन के ऊपर नीचे के सिरों को तने पर डोरी से बांध देते हैं। इस प्रकार बंधे अण्टे को पानी से सींचने की आवश्यकता नहीं होती। ३० दिन में गांठ पड़नी आरम्भ हो जाती है और ४० दिन में आरम्भिक जड़ें फूटने लगती हैं। अब पोलीथीन का आवरण हटा लिया जाता है। ७५ दिन में जड़ें अच्छी तरह निकल आती हैं। एक वर्ष पुरानी टहनी से उसी वर्ष की टहनी की अपेक्षा अधिक जड़ें निकलती हैं। पश्चिमी तट की दशाओं में जून और जुलाई के

चित्र १–अंटा बांधने के ७५ दिन बार निकली जड़ें

महीनों को छोड़ कर और किसी भी महीने में यह काम किया जा सकता है। अगस्त और अप्रेल के बीच के महीनों में विशेष सफलता मिलती है। नवम्बर के महीने में बांधे गये अण्टों में शत प्रति शत सफलता पाई गई है।

यह पाया गया है कि एक वर्ष पुरानी टहनियों के अण्टे जून और जुलाई के महीनों में मातृ वृक्ष से काट कर सीधे बाग में लगाये जा सकते हैं, जबकि दूसरे महीनों में अलग किये गये अण्टों को रोपने से पहले कुछ समय तक और पालना होता है। पश्चिमी तट के क्षेत्र में अगस्त के बाद अण्टों को रोपना सफल नहीं पाया जाता।

अण्टे तैयार करने की यह विधि काफी सस्ती है। पोलीथीन की लपेटनें काफी अच्छी रहती हैं और एक अण्टे पर से उतार कर दूसरे

पर इस्तेमाल की जा सकती हैं । इसके स्थान पर केले के तने की परतों का उपयोग उचित नहीं पाया गया । एक अण्टे को तैयार करने पर लगभग १७ नये पैसे की लागत अनुमानी गई है ।

मछली पालन में उर्वरक

मछलियां अत्यन्त छोटे वनस्पति कण, जिन्हें प्लांकटन कहते हैं, खाकर जीती हैं । बहुत से छोटे-मोटे कीड़े भी प्लाकंटन खाते हैं और तालाबों में पनपते हैं । यह कीड़े भी मछलियों द्वारा खाये जाते हैं । इस प्रकार प्लांकटन से प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तौर पर मछलियों को भोजन मिलता है जिससे उनमें वृद्धि होती है । प्लांकटन वनस्पति हैं । उसकी उपज के लिए यह आवश्यक है कि तालाब में उचित प्रकार का खाद या उर्वरक दिया जाये ।

तालाबों में दिया जाने वाला यह उर्वरक साधारण खेती के उर्वरकों से भिन्न प्रकार का नहीं होता । जिस प्रकार किसी खेत की मिट्टी का रासायनिक विश्लेषण करके उसमें जिस तत्व की कमी होती है वह उसे उर्वरक के रूप में दिया जाता है । उसी प्रकार तालाबों के पानी का विश्लेषण किया जाता है और उनमें आवश्यकतानुसार ये पोषक पदार्थ डाले जाते हैं । संयुक्त राज्य अमेरीका के दक्षिणी भाग में इस ओर कुछ विशेष ध्यान दिया जा रहा है । वहां बसन्त के आरम्भ से लेकर पतझड़ भर यह उर्वरक दिया जाता है । उर्वरक की मात्रा तालाब के प्रति एकड़ के लिए ४००–१२०० पौंड तक हो सकती है । यह आवश्यकतानुसार कई बार में दिया जाता है । उर्वरक की उचित मात्रा तालाब में पहुंची या नहीं, इसका निर्णय पानी के रंग से किया जाता है । उर्वरक की ठीक मात्रा पड़ने पर पानी के रंग को हरा कत्थई हो जाना चाहिए । ऐसे पानी में यदि हाथ को कोहनी तक डाल दिया जाता है तो उंगलियाँ दिखाई नहीं पड़तीं । उर्वरक डालने से पानी नहाने और तैरने के लिए हानिकर नहीं होता और छानने के बाद उसे घरेलू काम में भी इस्तेमाल किया जा सकता है ।

इस क्षेत्र में किसान अधिकतर पानी और धरती की सुरक्षा के लिए तालाबों का निर्माण करते हैं । इन तालाबों में प्रति एकड़ १००–१००० मछलियाँ, आमतौर पर ब्लूगिल और बास किस्म की पाली जाती हैं । इनके बीज सरकार मुफ्त देती है । अरकन्साज़ में मछली पालन एक व्यवसाय है । एक समय था, जब यहां धान बोने वाले धान की फसल के साथ हर दूसरे-तीसरे वर्ष सोयाबीन, जई या रुई से हेर-फेर करते थे । अब धान के साथ प्रति दूसरे वर्ष मछली का हेर-फेर किया जाता है । इससे किसान को अधिक आय होती है । यदि मछली-पालक तालाब से लाभ उठाना चाहता है तो उसे तालाब को उसी तरह संतुलित दशा में रखना होता है जैसे कि खेतों को रखा जाता है । इस काम के लिए यह अच्छा होता है कि प्रति वर्ष तालाब में से लगभग आधी मछलियां पकड़ ली जायें । औसत रूप से उर्वरक डाले हुए तालाबों में प्रति वर्ष, प्रति एकड़ लगभग २०० पौंड मछलियां प्राप्त होती हैं । यदि उर्वरक नहीं डाले जाते तो इनकी मात्रा ५० पौंड से भी कम होती हैं । इस प्रकार के तालाबों का प्रबन्ध ठीक तरह से किया जाना चाहिए, यदि ऐसा नहीं होता तो उर्वरक देने से बहुत अधिक मछलियां केवल जीवित रहती हैं, उनकी शारीरिक वृद्धि नहीं होती ।

सुपारी के तनों की सुरक्षा

गर्मी के दिनों में जब तेज धूप पड़ती है तो

सुपारी के वृक्षों के तनों पर, विशेषतया दक्षिण-पश्चिम की ओर, गहरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इन स्थानों पर तने चटक जाते हैं और दरारों में होकर लकड़ी को नष्ट करने वाले फफूंद उनके भीतर पहुंच जाते हैं। जब आंधी, विशेषतया वर्षा के दिनों में, चलती है तो ऐसे तने टूट जाते हैं। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि ऐसी घटना की रोकथाम दो प्रकार से की जा सकती है। एक उपाय यह है कि सुपारी के बागान के दक्षिण-पश्चिम की ओर पत्तियों वाले वृक्ष उगाये जायें। दूसरी तरकीब यह है कि सुपारी की पत्तियां तने से लपेट कर उन वृक्षों की रक्षा की जाये जिनको अभी हानि नहीं पहुंची है। यदि कुछ वृक्षों को हानि पहुंच चुकी है तो उनके तनों के चारों ओर सुपारी के तनों को चीर कर बांधा जा सकता है। इससे उनके तनों के टूटने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

बिड़ला संग्रहालय में कोक भट्टी का नमूना

इंग्लैंड की साइमन कार्वर्स लिमिटेड नामक एक फर्म ने कलकत्ता स्थित बिड़ला औद्योगिक और प्रौद्योगिकी संग्रहालय को कोक भट्टी संयत्र का एक नमूना भेंट किया है। यह नमूना संग्रहालय में धातुकर्मकी की गैलरी में ब्लास्ट भट्टी के निकट रखा गया है। इस संग्रहालय की विभिन्न विभागों में पैट्रोलियम, बिजली, नाभिक भौतिकी, इलैक्ट्रोनिक्स, टैलीविजन, प्रकाशकी और धातुकर्मकी से सम्बन्धित बहुत से नमूने प्रदर्शित किये गये हैं। जन-साधारण के लिये यह संग्रहालय, सोमवार, शनिवार और विज्ञप्त छुट्टी के दिनों को छोड़ कर तीसरे
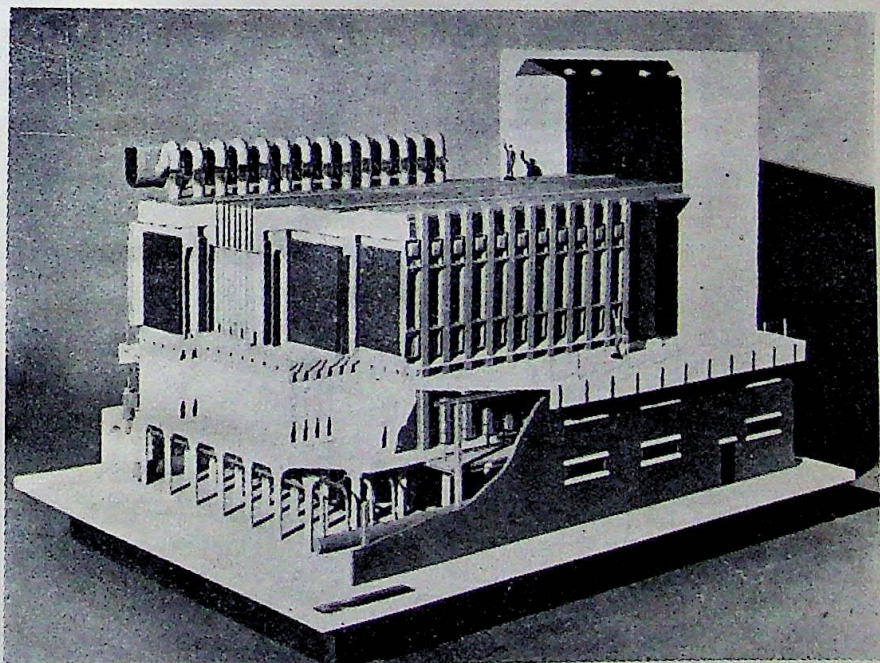
चित्र १—बिड़ला प्रौद्योगिकी संग्रहालय में कोक भट्टी का नमूना

पहर के २ बजे से शाम के ७ बजे तक खुला रहता है।

पीले रंग में निकेल का उपयोग

निकेल एक अत्यन्त उपयोगी धातु है। वह ३,००० से अधिक मिश्र धातुओं में मिलाई जाती है और आधुनिक उद्योग के लगभग सभी पहलुओं में इस्तेमाल की जाती है। पिछले दिनों में टिकाऊ पीले रंग का प्राप्त करना एक समस्या रही है। अब तक के पीले रंग खुले स्थानों में इस्तेमाल नहीं किये जा सकते थे। वे धूप, गर्मी, नमी और काटने वाली गैसों के सम्पर्क में आते थे, तो खराब हो जाते थे। यह समस्या अब निकेल की सहायता से हल कर ली गई है। इन रंगों को सन यलो एन और सन यलो सी का नाम दिया गया है। इनका रंग १,०००° फं. से ऊँचे ताप पर भी खराब नहीं होता। उन पर क्षारों और तेजाबों का भी कोई असर नहीं होता। सन यलो रंगों की उत्पत्ति टाइटेनियम डायआक्साइड के रंगों की परम्परा में हुई है। निकेल आक्साइड और टाइटेनियम आक्साइड के मिश्रण से एक हलका पीला रंग तैयार होता है। इस मिश्रण में निकेल की मात्रा लगभग ३ प्रति शत होती है। सन यलो रंगों में रंग के कण पीले होते हैं इसलिये उनके साथ रंग के फटने की समस्या भी नहीं होती।

चाय बागान में छिड़काव सिंचाई का परीक्षण

आसाम के चाय बागानों में छिड़काव विधि से सिंचाई करने के सम्बन्ध में परीक्षण किये जा रहे हैं। एम्पायर आफ इण्डिया एण्ड सीलोन टी कम्पनी लिमिटेड ने अपने बागानों में कंकरीट और ईंट की चिनाई के नल बनाये हैं और इनके द्वारा ४ मील से पानी लाकर बागान में छिड़काव सिंचाई के लिये उपयोग किया है। पानी १०० पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव से छिड़का जाता है। एक मिनिट में छिड़काव की मात्रा ४४० गैलन होती है। एक घंटे में ऐसी एक मशीन २½ एकड़ के ऊपर ½ इंच पानी बरसा देती है। इस प्रकार आसाम में १,००० एकड़ क्षेत्र के चाय बागान की सिंचाई जो की गई है उस से चाय की उपज प्रति एकड़ ८८० पौंड से बढ़ कर १,४४० पौंड हो गई है।

यह समझा जाता है कि इस सिंचाई योजना के निर्माण पर जो पूंजी लगेगी वह ४०० रुपये प्रति एकड़ के आसपास होगी। यह लागत कुछ अधिक मानी जाती हैं। इसलिये, कि यहां पानी को दूर से लाना पड़ा है और यह बागान टुकड़ों में बिखरा हुआ है। मोटे तौर पर यह अनुमाना जाता है कि सूख मौसम में ६ से ८ इंच प्रति एकड़ पानी छिड़कने में जो लागत आयेगी वह ४० और ५० रुपये के बीच में होगी।

अदरक की उपज में वृद्धि के उपाय

केरल राज्य के वायानाड केन्द्र में जो परीक्षण किये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि अप्रैल के बीच में जो फसल लगाई जाती है उससे मई, मध्य-मई, और आरम्भिक जून में लगाई फसलों की अपेक्षा अधिक उपज मिलती है। साधारणतया पश्चिमी तट पर किसान अदरक को दक्षिण-पश्चिमी मानसून आने से कुछ ही दिन पहले लगाते हैं। यह भी पाया गया है कि यदि खेत में २०,००० पौंड प्रति एकड़ के हिसाब से तीन बार में खेत में हरी पत्तियां मल्च कर दी जाती है तो अदरक की उपज दूनी से भी अधिक हो जाती है। यह मल्च अदरक के बाद बोई जाने वाली दूसरी फसल को भी लाभ पहुंचाता है। इस प्रकार अदरक को जल्दी बोकर और उसके खेत में

हरी पत्तियां मल्च करके उसकी उपज में काफी वृद्धि की जा सकती है।

साल की पौध की वृद्धि के लिये निलाई

वन में साल की पौधों की वृद्धि को आस-पास उगे हुये खर-पतवार और वृक्षों से हानि पहुंचती है। देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान में इस सम्बन्ध में अध्ययन किये गये हैं। इनसे पता चलता है कि वृक्षों की जड़ें साल की जड़ों से उतनी प्रतियोगिता नहीं करतीं, जितनी कि खर-पतवारों की जड़ें करती हैं। यह पाया गया है कि साल की पौधों में सब से अधिक बढ़त १५ अप्रैल–१५ मई, १५ जून–१५ जुलाई और १५ अगस्त–१५ सितम्बर के बीच में होती है। इन अवधियों में से पहली और तीसरी अवधि अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन दिनों साल की पौधें तेजी से बढ़ती हैं और दूसरी वनस्पतियां भी धरती से अधिक खाद-पानी चूसती हैं। यदि साल के क्षेत्रों की निलाई इन अवधियों से कुछ पहले अर्थात जाड़ों के अंत या गर्मियों के आरम्भ में कर दी जाती है तो खर-पतवारों की जड़ों से प्रतियोगिता कम हो जाने से साल की पौधों की वृद्धि अधिक अच्छी होती हैं।

भारतीय मधु मक्खी की वृद्धि की अवधि

भारतीय मैदानी मधु मक्खी का शास्त्रीय नाम *ऐपिस इण्डिका* है। इस जाति की कर्मी मक्खियों को अण्डे की अवस्था से पूर्ण वयस्क अवस्था तक पहुंचने में जो समय लगता है उसका अध्ययन इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के प्राणि-शास्त्र विभाग में किया गया है। इस अध्ययन से पाया गया है कि औसतन अण्डे से संडे निकलने में मोटे तौर से ३ दिन लगते हैं। सूंडे ५ दिन तक रहते हैं। उसके बाद वे कोशित हो जाते हैं। कोशित अवस्था ११ दिन रहती है। इसके बाद कर्मी मक्खी कोश में से अपने पूर्ण वयस्क रूप में निकल आती है।

कोयले की खान की रेत से भराई

पत्थर कोयले की खान में से कोयला निकाल लेने के बाद जो पोल बन जाती है उसे यदि वैसा ही छोड़ दिया जाये, तो कभी-भी उस स्थान पर धरातल के धसकने के कारण भारी दुर्घटना हो सकती है। इससे बचने के लिये खान की जिन भुजाओं से कोयला निकाल लिया जाता है उनमें रेत भर दिया जाता है। भारत में इस प्रकार रेत भरने की पहली योजना सिंगारेनी खानों में चालू की जा रही है। इस काम के लिये रेत खान से ५ मील दूर २ नदियों के संगम से तार के रस्से से लटकती हुई गाड़ियों द्वारा रेत भण्डारों में लाई जायेगी, जहाँ से पम्प द्वारा उसे खान के भीतर खाली स्थानों में पहुंचाया जायेगा।

दुर्गापुर की गैस कलकत्ते के लिये

दुर्गापुर में पत्थर कोयले से कोक बनाने के कारखाने में जो गैस प्राप्त होती है उसे कलकत्ते ले जाने के लिये नल बिछाने की मंजूरी केन्द्रीय सरकार ने दे दी है; यह सूचना श्री मनुभाई शाह ने प्रस्तुत की है। यह नल पश्चिमी बंगाल की सरकार द्वारा बिछाया जायेगा। इस की लम्बाई १२० मील होगी और इस पर ३१५ लाख रुपये लागत आयेगी। ये नल यूगोस्लाविया से आयेंगे। पश्चिमी बंगाल की सरकार दुर्गापुर में स्थानीय कामों के लिये गैस देती रहेगी और प्रति दिन ४५० ब्रिटिश थर्मल यूनिट मान की ६७० लाख टन फुट गैस कलकत्ते भेज सकेगी।

कारखानों के व्यर्थ से उर्वरक

धातुकर्म और रासानियक उद्योगों के कारखानों से काफी व्यर्थ पदार्थ फेंका जाता है। इन पदार्थों में तांबा, जस्त, मैंगनीज आदि जैसे तत्व उपस्थित होते हैं। ये पदार्थ सूक्ष्म उर्वरकों की भांति इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इनकी तनिक-सी मात्रा से उपज में बहुत काफी वृद्धि हो जाती है। रूस में कृषि विशेषज्ञों द्वारा इस सम्बन्ध में जो अनुसंधान किये गये हैं उनसे पता चलता है कि प्रति एकड़ केवल कुछ १०० ग्राम सूक्ष्म उर्वरक देने से गेहूं की उपज में १½ से २ गुनी तक वृद्धि हुई है।

अमरूद के पोषक तत्व

साधारणतया अमरूद (*सिडियम गुजावा* और (*सिडियम कैटेलाइनम*) को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता, जितना कि उसे, उसमें उपस्थित विटैमिन सी की मात्रा के कारण समझा जाना चाहिये। पोषण अनुसंधान प्रयोगशाला, कुन्नूर, द्वारा तैयार किये हुये **हैल्थ बुलेटिन** नं० २३ के अनुसार अमरूद (पहाड़ी) के १०० ग्राम में २९९ सहस्रांश ग्राम विटैमिन सी होता है जो आंवले में पाये जाने वाली मात्रा के बाद, सबसे अधिक है। कच्चे अमरूद में पके फलों की अपेक्षा विटैमिन सी कम होता है; परन्तु बहुत ज्यादा पकने पर भी वह बहुत कम, ५० से १०० मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम रह जाता है। छिलके, ऊपरी गूदे और भीतरी गूदे में विटैमिन सी की मात्रा १२ : ५ : १ के अनुपात में पाई गई है।

अमरूद को सुखा कर तैयार किये गये माल में विटैमिन सी की मात्रा प्रति १०० ग्राम में १७० से १८९० सहस्रांश ग्राम तक पाई गई। पानी में उबाल कर बनाई गई अमरूद की लपसी को जमा कर ढाई वर्ष तक रखा गया। और इस भण्डारन के बाद उसमें विटैमिन सी की मात्रा प्रति १०० ग्राम में २८८ सहस्रांश ग्राम मिली।

विटैमिन सी के अतिरिक्त अमरूद में जो पोषक पदार्थ होते हैं वे सारणी १ में दिये जा रहे हैं।

सारणी १—अमरूद के पोषक तत्व

रचक		मैदानी अमरूद	पहाड़ी अमरूद
नमी	%	७६.१	८५.३
प्रोटीन	%	१.५	०.१
चिकनाई (ईथर निसार)	%	०.२	०.२
खनिज पदार्थ	%	०.८	०.६
रेशे	%	६.९	४.८
कार्बोहाइड्रेट	%	१४.५	८.१
कैल्शियम	%	०.०१	०.०५
फास्फोरस	%	०.०४	०.०२
लोहा सहस्रांश ग्राम	%	१.०	१.२
कैरोटिन (विटैमिन ए)	%	रंच	रंच
निकोटिनिक एसिड सहस्रांश ग्राम	%	०.३	०.२
रीबोफ्लैवीन सहस्रांश ग्राम	%	२०	३०
विटैमिन सी, सहस्रांश ग्राम	%	...	२९९
प्राप्य गर्मी कलौरी		६६	३८

टेक्निकल और व्यावसायिक परीक्षाओं को मान्यता

टेक्निकल और व्यावसायिक योग्यताओं का मूल्यांकन करने वाले बोर्ड की सिफारिश पर भारत सरकार ने केन्द्रीय सरकार की नौकरियों के लिये निम्नलिखित डिप्लामाओं और प्रमाण-पत्रों को मान्यता प्रदान की है :—

(१) आसाम, बिहार और पंजाब की शिल्प शिक्षा परिषदों या मंडलों द्वारा दिये गये सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी और बिजली इंजीनियरी के डिप्लोमे; (२) इंजीनियरी शिक्षा मण्डल, उड़ीसा, द्वारा दिये गये सिविल, यांत्रिक, बिजली और खनन इंजीनियरी के डिप्लोमे; (३) बंगाल की इंजीनियरी और शिल्प शिक्षा परिषद द्वारा दिये गये सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी और बिजली इंजीनियरी के डिप्लोमे; (४) बम्बई के शिल्प शिक्षा विभाग द्वारा दिये गये सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी, बिजली इंजीनियरी, बिजली और यातायात इंजीनियरी, मोटरगाड़ी इंजीनियरी, अर्न्दाह इंजीनियरी, कपड़ा उद्योग, तेल, साबुन और रंग-रोगन टेक्नालौजी, रेडियो इंजीनियरी, चमड़ा उद्योग और जूता उद्योग के डिप्लोमे; (५) १९५७-५८ से मध्य प्रदेश के शिल्प परीक्षा मण्डल और १९५९ से भोपाल के शिल्प शिक्षा मण्डल द्वारा दिये गये सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी, बिजली इंजीनियरी और कपड़ा टेक्नालौजी के डिप्लोमे; (६) हैदराबाद के शिल्प शिक्षा और प्रशिक्षण मण्डल द्वारा दिये गए सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी, बिजली इंजीनियरी, मोटरगाड़ी इंजीनियरी और मत्स्य-पालन के डिप्लोमे; (७) १९५९ के बाद केरल के शिल्प शिक्षा मण्डल द्वारा दिए गए सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी, बिजली इंजीनियरी, आटोमोबाइल इंजीनियरी और खाद्य, मत्स्य-पालन, कपड़ा, रसायन, टेक्नालौजी के डिप्लोमे; (८) मैसूर स्थित बंगलौर के शिल्प शिक्षा मण्डल द्वारा दिए गए सिविल इंजीनियरी, यांत्रिक इंजीनियरी, बिजली इंजीनियरी, रेडियो इंजीनियरी, ध्वनि इंजीनियरी, खान इंजीनियरी और छपाई, कपड़ा, सिनेमैटोग्राफी टेक्नालौजी के डिप्लोमे; और (९) मद्रास के टेक्नालौजिकल डिप्लोमा परीक्षा मण्डल द्वारा दिए गए सिविल इंजीनियरी यांत्रिक इंजीनियरी, बिजली इंजीनियरी, स्वच्छता इंजीनियरी, आटोमोबाइल इंजीनियरी सिनेमैटोग्राफी और ध्वनि इंजीनियरी, रासायनिक इंजीनियरी तथा चमड़ा, कपड़ा, खाद्य, छपाई और मत्स्य-पालन तथा नौका-वहन इंजीनियरी के डिप्लोमे।

गणित का शिक्षण

गणित विज्ञान की भाषा है। विज्ञान के विकास और प्रसार के लिये गणित का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। साधारण तौर पर यह ज्ञान हमें स्कूलों में गणित की शिक्षा से प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में इंगलैंड के **शिक्षा मंत्रालय** का **पैम्फलेट नं० ३६** एक महत्वपूर्ण और रोचक प्रकाशन मालूम होता है। इसका नाम है : **संकेन्डरी स्कूलों में गणित का शिक्षण।** **इस** पैम्फलेट के लेखकों का आग्रह है कि गणित सब के लिये रोचक हो सकता है और सभी इसके काफी बड़े भाग में पारंगत हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षण की विधि ठीक प्रकार की हो। आमतौर से गणित में कुछ विधियां सिखाई जाती हैं जिनमें विद्यार्थी को दक्षता प्राप्त करनी होती है। इस प्रकाशन का कथन है कि यदि गणित के उद्देश्य और उसकी प्रकृति सम्बन्धी विचारों को सरल

और सीधी भाषा में रख दिया जाता है तो विधि स्वयं अपने आप आ जाती है। वास्तव में विद्यार्थी का सामंजस्य गणित के साथ नहीं, वरन् गणित का सामंजस्य विद्यार्थी के साथ बैठाया जाना चाहिये।

गंगा घाटी की नदियों से बिजली की सम्भावना

केन्द्रीय जल और शक्ति आयोग ने गंगा घाटी की नदियों का सर्वेक्षण उनसे बिजली उत्पादन की सम्भावना के विचार से किया है। इस सर्वेक्षण में यमुना, टोंस, सोन, घाघरा, कोसी और दामोदर घाटियों का अध्ययन शामिल है। समझा जाता है कि इन नदियों के उद्गम से लेकर अन्त तक अभी के इंजीनियरिंग कौशल के अनुसार ५१ बिजली घरों की व्यवस्था की जा सकती है और उनसे सब मिलाकर १३० लाख किलोवाट बिजली बनाई जा सकती है। इस सम्भावना में से लगभग ७५ लाख किलोवाट की सम्भावना पूर्णतया नेपाल राज्य में है और १८ लाख की भारत नेपाल सीमा पर है। समझा जाता है कि इस सम्भावना को आगामी २०-३० वर्षों में वास्तविकता में बदला जा सकता है।

परमाण्विक बिजली घर

लोकसभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए ९ सितम्बर को प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने बताया कि देश में पहला परमाण्विक बिजलीघर अहमदाबाद और बम्बई के बीच समुद्र तट पर बनाया जायेगा और इससे १९६५ के बीच में बिजली प्राप्त होने लगेगी। यह लगभग २,५०,००० किलोवाट बिजली पैदा कर सकेगा जो अहमदाबाद-सौराष्ट्र और बम्बई क्षेत्र में इस्तेमाल की जायेगी। इसकी ठीक स्थिति बहुत सी भौतिक और शिल्पिक बातों पर निर्भर करेगी, जिनका अभी निर्धारण किया जाना है।

परमाणु शक्ति कमीशन ने इस बिजलीघर पर आने वाली लागत का अनुमान ४३ करोड रुपये अनुमाना है, जो प्रति किलोवाट उत्पादन क्षमता के लिये १,७०० रुपये पड़ती है। दूसरे परमाण्विक बिजलीघरों की स्थापना अभी विचाराधीन है।

दियासलाई के बक्स

दशमलव सिक्कों के चलन से आरम्भ में छोटे पैमाने पर दियासलाई बनाने वालों को अपना माल बेचने में कठिनाई अनुभव हुई थी। इसका कारण चलन मेंइन सिक्कों की कमी थी। इस कठिनाई को कम करने के लिये मार्च १९५८ में सरकार ने माचिस बनाने वालों को ३० और ५० तीलियों के बक्स भरने की अनुमति दे दी थी पर अब स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया है और दियासलाई के कई आकारों के बक्सों के कारण खरीदारों को भी कठिनाई होती है। इसलिये भारत सरकार ने इस अनुमति को १ अक्तूबर, १९५९ से वापिस लेने का निश्चय किया है।

केन्द्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन

योजना आयोग के अनुरोध पर कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इणडिस्ट्रियल रिसर्च की शासिका समिति ने एक केन्द्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन स्थापित करना स्वीकार कर लिया है। इस संगठन का उद्देश्य उन सब तरह के वैज्ञानिक उपकरणों के देश में विकास और उत्पादन को कार्यान्वित करना है जो विभिन्न प्रकार के शिक्षण, अनुसंधान और उद्योगों में इस्तेमाल किये जाते हैं। राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली, के डिप्टी डायरेक्टर, डा. के. एन. माथुर को ३० अक्तूबर, १९५९,

से इस केन्द्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन का निदेशक नियुक्त किया गया है।

आसाम में क्षेत्रीय अनुसंधानशाला

कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च आसाम और आस-पास के क्षेत्रों के लिये एक क्षेत्रीय अनुसंधानशाला की स्थापना जोरहाट में कर रही है। यह अनुसंधानशाला सड़क, इमारत, जन स्वास्थ्य इंजीनियरिंग, पत्थर कोयले, खाद्य, चमड़े आदि से सम्बन्धित क्षेत्रीय समस्याओं के अध्ययन के साथ-साथ खनिज विज्ञान, वनौषधियों और भूकम्प इंजीनियरिंग की ओर विशेष ध्यान देगी। आसाम सरकार इसके भवन निर्माण के लिये ११५ एकड़ भूमि दे रही है। अनुसंधानशाला का निर्माण तीसरी पंच वर्षीय योजना में पूरा होगा। इस पर कुल ८० लाख रुपये लागत आने का अनुमान है। डा. बी. एन. मित्रा, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के भूतपूर्व असिस्टेंट डायरेक्टर-जनरल इस प्रयोगशाला के निदेशक नियुक्त किये गये हैं।

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक यांत्रिकी का पांचवां सम्मेलन

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक यांत्रिकी की भारतीय परिषद के तत्वावधान में २३-२६ दिसम्बर, १९५९ को रुड़की विश्वविद्यालय में, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक यांत्रिकी का पांचवां सम्मेलन हो रहा है। इसके सभापति रुड़की विश्वविद्यालय के उपकुलपति, डा. ए. एन. खोसला होंगे। इसमें जिन विषयों पर विचार विनिमय किया जायेगा वे हैं: लचक-लोच-प्रवाहिकी; तरल यांत्रिकी (वायुगतिकी-जलगतिकी); ठोस पदार्थों की यांत्रिकी (बैलिस्टिक्स-कम्पन-घर्षण-चिकनाना); सांख्यिकी यांत्रिकी, ऊष्मागतिकी—ऊष्मा थानांतरण; भौतिकी, सांख्यिकी और संगणना का गणित तथा प्रयोगी विधियां।

सम्मेलन आरम्भ होने से पहले "अ-रैखिक भौतिक समस्याओं" के सम्बन्ध में एक गोष्ठी होगी। इसमें लचक, तरल यांत्रिकी, कम्पन, ताप प्रवाह और बैलिस्टिक्स से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जायेगा। सम्मेलन में, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक यांत्रिकी के अन्तर्राष्ट्रीय संघ के सभापति प्रो. एफ. ओदक्विस्त भी भाग लेंगे।

इस सम्मेलन के बारे में अधिक जानकारी सेक्रेटरी-ट्रेज़रर आफ दि इंडियन सोसायटी आफ थ्योरिटिकल एण्ड एप्लाइड मैकेनिक्स, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टैक्नोलोजी, खड़गपुर, से प्राप्त की जा सकती है।

नींव इंजीनियरी का दोहरावन पाठ्यक्रम

रुड़की विश्वविद्यालय में १ फरवरी १९६० से २७ फरवरी तक नींव इंजीनियरी का एक स्नातकोत्तर दोहरावन पाठयक्रम चलाया जायेगा। इसमें केवल वही इंजीनियर शामिल हो सकेंगे जो कहीं काम करते हों। इसके सम्बन्ध में अधिक जानकारी, डायरेक्टर, रिफ्रैशर कोर्सेज़, यूनिवर्सिटी आफ रुड़की, रुड़की, से प्राप्त की जा सकती है।

लघु उद्योगों के लिये पीतल की फूट

छोटे उद्योगियों को अपनी आवश्यकता का कच्चा माल ठीक कीमत पर प्राप्त करने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसलिये राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम ने इन उद्योगों को कच्चा माल देने की एक योजना बनाई है। इस योजना के अंतर्गत निगम आर्डनेन्स फैक्ट्रियों

से प्राप्त पीतल की फूट ग्रौर सिल्लियां छोटे उद्योगों को वितरित करेगा। इस काम के लिये कलकत्ता, मद्रास, बम्बई ग्रौर दिल्ली में डिपो खोले जायेंगे। इस योजना के ग्रनुसार निगम एक डिपो लुधियाना में छोटे उद्योगों को लोहा और इस्पात दे रहा है। निगम छोटे पैमाने पर साइकिल के पुर्जे जोड़कर साइकिल बनाने वालों के लिये विदेशों से पुर्जे भी ग्रायात करता है।

चमड़ा उद्योग के उपजातों के इस्तेमाल पर गोष्ठी

चमड़ा उद्योग की समस्याग्रों से सम्बन्धित पांचवीं गोष्ठी फरवरी, १९६० में केन्द्रीय चमड़ा ग्रनुसंधान संस्थान, मद्रास, में होगी। इस गोष्ठी में विचार-विनिमय का विषय "चमड़ा उद्योग के उपजातों का उपयोग" होगा।

कच्ची खाल को, जो वैसी ही छोड़ देने पर सड़ कर नष्ट हो जाती है, जब चमड़े में परिवर्तित किया जाता है तो वह गर्मी, पानी ग्रौर जीवाणुग्रों से सुरक्षित हो जाती है। इस क्रिया में खाल के कई गीले ग्रौर सूखे उपचार किये जाते हैं। इन उपचारों में बहुत से उपजात निकलते हैं। इनको तरह-तरह के उपयोगों में लाया जा सकता है। सिझाने, चूनित करने, बाल निकालने, वेटित करने ग्रादि की क्रियाग्रों में जो पानी निकलता है उसमें बहुत-सा नाइट्रोजनधारी पदार्थ होता है। इसको एक बहुत बड़ी सीमा तक लाभदायक रीति से खेती में उर्वरक की भांति इस्तेमाल किया जा सकता है। बचा हुग्रा चूना चूल्हे ग्रादि की ईंटें बनाने ग्रौर कुछ विशेष प्रकार की धरतियों को स्थायीत्व प्रदान करने के काम में लाया जा सकता है। खालों के नमकीन पानी में जो जम सकने वाली प्रोटीनें मिलती हैं वे केसीन के स्थान में इस्तेमाल की जा सकती हैं। खाल की कतरनों ग्रौर खुरचनों से बढ़िया फोटोग्राफी ग्रौर खाद्य जिलेटिन ग्रौर सरेस बनाया जा सकता है। बाल फैल्ट बनाने के काम में लाये जा सकते हैं। कमावक छालों में से टैनीन निकाल लेने के बाद उन्हें जलाने के लिये, घोड़ों के मार्गों पर बिछाने के लिये तथा गत्तों ग्रौर व्हाइट लैड बनाने के काम में लाया जा सकता है। कमावन गड़हों की गाद को जलाने के लिये ग्रौर बेसिक क्रोम तरल तैयार करने में बाइक्रोमेट के ग्रपकरणकारी के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इनके साथ पशु के शरीर के शेष भाग के उपयोगी इस्तेमाल का प्रश्न भी ग्राता है। निश्चय ही चमड़ा उद्योग में रुचि रखने वाले व्यक्ति इन उपजातों के उपयोग में भी ग्रत्यधिक रुचि रखते हैं।

इस गोष्ठी के विषय में ग्रधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये संयोजक, गोष्ठी समिति, केन्द्रीय चमड़ा ग्रनुसंधान संस्थान, मद्रास-२०, को लिखा जा सकता है।

बुनाई बोबिनों के लिये इनामल

भारतीय पटेन्ट नं० ५३,६३६

बुनाई उद्योग में इस्तेमाल की जाने वाली लकड़ी की बोबिनों पर इनामल की तह चढ़ा देने से उन पर पानी असर नहीं करता और उनकी उपयोगिता तथा आयु बढ़ जाती है। इस काम के लिये देश में, काजू अथवा भिलवा खोल के तरल पर आधारित काले इनामल पहले से ही तैयार और इस्तेमाल किये जाते हैं। पर बहुत से व्यावहारिक कारणों वश आजकल इस काम के लिये विभिन्न चमकीले रंगों के इनामलों की मांग हो रही है। इस्तेमाल में बोबिन की सतह पर बहुत जोर पड़ता है। ऐसा समझा जाता है कि देश में ऐसे चमकीले इनामल, जिनकी तहें इतना जोर सह सकें, नहीं बनाये जाते; और इस प्रकार के इनामलों की मांग आयात से पूरी की जाती है।

अनुमाना जाता है कि देश में आजकल ३-४ लाख ग्रुस बोबिन प्रति वर्ष तैयार किये जाते हैं। एक गैलन इनामल औसतन ३ ग्रुस बोबिनों को रंगने के लिए काफी होता है। इस हिसाब से देश में लगभग १ लाख गैलन या ४०० टन इनामल की प्रति वर्ष आवश्यकता समझी जा सकती है।

बोबिनों पर ऐसा इनामल चढ़ाने के लिये राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना, में परिवर्तित यूरिआ रेज़िन और परिवर्तित एल्किड रेज़िन के मिश्रण पर आधारित एक नुस्खे का विकास किया गया है। परिवर्तित यूरिआ फार्मल्डिहाइड रेज़िन तैयार करने के लिये फार्मालीन, यूरिआ और फ्यूज़ल आयल की समुचित मात्राओं के बीच नियंत्रित हालतों में पारस्परिक प्रतिक्रिया का उपयोग किया जाता है। प्रतिक्रिया से प्राप्त पदार्थ को परिवर्तित एल्किड रेजिनों की आवश्यक मात्राओं के साथ मिलाया जाता है। एल्किड रेज़िन को परिवर्तित करने के लिये सूखने और अर्द्ध-सूखने तेलों से प्राप्त चिकने तेजाबों का उपयोग किया जाता है। इस मिश्रण में आवश्यकतानुसार जल्दी सुखाने वाले और पतला करने वाले पदार्थ मिलाये जाते हैं। उसके बाद नुस्खे में इच्छित रंग का पिगमैंट मिला दिया जाता है।

बोबिनों पर रंगीन नुस्खे की तह चढ़ाने से पहले उन्हें समुचित उपचार के बाद पिगमैंट रहित नुस्खे में डुबोते हैं, हवा में सुखाते हैं और सेकते हैं। इसके बाद उन पर नुस्खे की दो तहें और लगाई जाती हैं। दूसरी तह रंग मिश्रित नुस्खे की होती हैं और अंतिम तह उस नुस्खे की होती है जिसमें भरत नहीं होती।

कुछ बड़े रंग बनाने वालों ने इस नुस्खे की परीक्षा की है और इसे संतोषजनक पाया है। जो फर्में पेंट या यूरिआ फार्मलडिहाइड रेजिनें बनाती हैं वे इस नुस्खे को बड़े पैमाने पर तैयार कर सकती हैं।

व्यावसायिक तौर पर इस नुस्खे को तैयार करने के लिये दो प्रतिक्रिया पात्रों, दो बाल मिलों और उचित आकार की टंकियों की जरूरत होगी।

जो इस विधि को व्यावसायिक रूप से इस्तेमाल करने में दिलचस्पी रखते हों, वे सेक्रेटरी, नेशनल रिसर्च डिवलपमेंट कारपोरेशन, मंडी हाउस, नई दिल्ली-१, से पत्र व्यवहार कर सकते हैं।

विमर्श
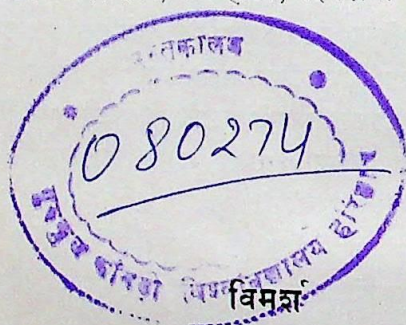
(पृष्ठ ४३२ का शेषांश)

पुस्तक में १४ अध्याय हैं। इनके शीर्षक हैं : (१) पनीर की प्रकृति और पनीर विधियों का विकास, (२) पनीर बनाने के दूध के गुण पर साइलेज का प्रभाव, (३) दूध की प्राकृतिक अवरोधक और उत्तेजक किस्में, (४) पनीरी दूध में ऐण्टीबायोटिक अंश, (५) पनीर आरम्भकों में जीवाणुनाशक, (६) लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया से अवरोधक पदार्थ, (७) पनीर बनाने के दूध का गर्मी उपचार, (८) दूध के जमाने में रैनेट, और दही का जल विच्छेदन (९) पनीर पकाने वाले पदार्थ और स्वादगंध, (१०) पनीर स्वादगंध की उत्पत्ति, (११) पनीर की क्रोमैटोग्राफी, (१२) पनीर में अल्प-पाश्चरीकरण की पहचान, (१३) मंद-अम्ल दूधों के लिये परखें और (१४) पनीर विकृति विज्ञान।

पुस्तक में चित्रों, ग्राफ़ों और सारणियों की सहायता से विषय के विभिन्न पहलुओं पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। उसके अंत में ३५० से अधिक साहित्यिक हवाले दिये गये हैं जो विषय विशेष के गम्भीर विद्यार्थी के लिये बहुत उपयोगी होंगे। पुस्तक एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है जो दूध उद्योग में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिये विशेष रूप से रोचक होना चाहिये।

GURUKULA KANGRI
LIBRARY
HARDWAR

Regd. No. D 464

उद्योग-व्यापार पत्रिका

अवश्य पढ़िये, क्योंकि

देश में उद्योग और व्यापार को आगे बढ़ाने के लिये क्या हो रहा है और आप इससे किस तरह फायदा उठा सकते हैं ? देश में क्या-क्या चीजें कहां-कहां बन रही हैं और आप क्या बनाकर अच्छी कमाई कर सकते हैं ? पंचवर्षीय योजना से हमारी क्या उन्नति हो रही है ? ये सभी प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर आपको अवश्य जानने चाहियें। और इन सबकी जानकारी पाने का अमूल्य साधन है—

उद्योग-व्यापार पत्रिका

इसलिये आप ६ रु० साल भर के लिए आज ही भेजकर ग्राहक बन जाइये।

नमूना पत्र लिखकर मंगाइये। एजेंटों को भरपूर कमीशन। पत्रिका विज्ञापन देने का अच्छा साधन है।

सम्पादक : उद्योग-व्यापार पत्रिका

वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

श्री बी. एन. शास्त्री, कौंसिल ग्राफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, द्वारा एशिया प्रेस, दिल्ली-७, में मुद्रित और प्रकाशित।